* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

कालिय-उद्धार

B.K. Mitra

यज्ञकी रक्षा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१ — गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, मार्च २०१७ ई० — संख्या ३

पूर्ण संख्या १०८४

श्रीराम-लक्ष्मणद्वारा विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा
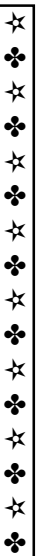
पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन॥
अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसें बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥
चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥
तब रिषि निज नाथहि जियँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥
आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि॥
प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख कीं रखवारी॥

[श्रीरामचरितमानस]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, मार्च २०१७ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail **सजिल्द शुल्क** — **वार्षिक** US$ 50 (₹3000), **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	**09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

***विश्वास करो*—**भगवान् सत्य हैं, नित्य हैं और सर्वत्र हैं। ऐसा कोई क्षण और स्थल नहीं, जब जहाँ वे तुम्हारे साथ न हों।

***विश्वास करो*—**भगवान् तुम्हारे परम सुहृद् हैं और वे सर्वशक्तिमान् हैं एवं तुम्हारे चाहते ही वे अपनी सारी शक्ति लगाकर तुम्हारा कल्याण करनेको प्रस्तुत हैं।

***विश्वास करो*—**भगवान्‌की प्रतिज्ञा है—'जो मुझे जैसे भजता है, मैं भी उसे वैसे ही भजता हूँ।' तुम भगवान्‌से मिलनेको अधीर होओगे तो वे भी तुमसे मिलनेको अधीर हो उठेंगे, तुम उनको चाहोगे तो वे भी तुमको वैसे ही चाहेंगे और तुम उन्हें अपनी कोई प्रिय वस्तु दोगे तो वे भी तुम्हें अपनी प्रिय वस्तु देंगे।

***विश्वास करो*—**भगवान् सत्यसंकल्प हैं। वे जब तुमसे मिलनेका संकल्प करेंगे तो उसी क्षण तुमसे निर्बाध मिलकर तुम्हें कृतार्थ कर देंगे। तुम उन्हें चाहोगे अपने क्षुद्र, संकुचित और पाप-तापकलुषित जड मनसे; क्योंकि तुम्हारा मन ऐसा ही है और वे तुम्हें चाहेंगे अपने महान्, विशाल और परमपवित्र दिव्य चिन्मय मनसे; क्योंकि उनका मन वैसा ही है, अतः उनके चाहते ही तुम कृतकृत्य और महान् बन जाओगे। तुम उन्हें दोगे अपनी कोई अनित्य, अपूर्ण और मायाजनित प्रिय वस्तु या अधिक-से-अधिक अर्पण कर दोगे अपना कर्मजन्य पांचभौतिक रक्तमांसमय घृणित शरीर; क्योंकि तुम्हारे पास वही है, और वे तुम्हें देंगे अपनी नित्य पूर्ण शाश्वत दिव्य वस्तु या अर्पण कर देंगे अपना नित्य पूर्ण सर्वैश्वर्यमय सच्चिदानन्द स्वरूप; क्योंकि उनके पास वही है। सोचो, कितना लाभ है उनसे मिलनेकी चाहमें, उन्हें चाहनेमें और उन्हें कोई वस्तु समर्पण करनेमें।

विश्वास करो*—**भगवान् तुम्हारे लिये कृपाकी मूर्ति ही हैं—'प्रभु मूरति कृपामयी है।'*** उनके पास इस कृपाके विपरीत या इसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। तब फिर तुम क्यों डरते हो कि कभी भगवान्‌की अकृपा हो गयी या कृपा न हुई तो जाने क्या होगा? जब तुम्हें देनेके लिये उनके पास कृपाके अतिरिक्त दूसरी वस्तु है ही नहीं, तब वे देंगे कहाँसे और तुमको वह मिलेगी भी कैसे?

***विश्वास करो*—**जहाँ-कहीं दुःख-संकट या पीड़ा-यातनाकी प्रतीति होती है, वहाँ वस्तुतः उनकी कृपा ही उस रूपमें प्रकट होकर तुम्हारा कोई महान् हित-साधन कर रही है, जिसको तुम जानते नहीं और इसीलिये उससे बचना चाहते हो, परंतु वे दयालु प्रभु तुम्हें उससे वंचित नहीं करना चाहते।

***विश्वास करो*—**उनकी कृपाका कठोर रूप वैसा ही है, जैसा निकम्मे, खेलमें रमे हुए, मैले-कुचैले और भूखे-नंगे पुत्रके प्रति स्नेहमयी जननीके द्वारा उसे नहलाने-धुलाने-खिलाने-पिलाने और सच्चा आराम पहुँचाकर सुखी करनेके उद्देश्यसे की हुई कठोर डाँट-डपट!

***विश्वास करो*—**भगवान् नित्य-निरन्तर तुम्हारे ऊपर अपनी कृपा-सुधा-धाराकी अनवरत अजस्र वर्षा कर रहे हैं। तुम्हारे आगे-पीछे, बायें-दायें और ऊपर-नीचे केवल कृपाकी ही सुधाधारा बह रही है। तुम आपाद-मस्तक उसीमें सराबोर हो। तुम्हारी शक्ति ही नहीं, जो उसको किसी ओरसे भी हटा सको।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

कालिय-उद्धार

एक दिन बलरामजीको साथमें लिये बिना ही श्रीकृष्ण स्वयं ग्वाल-बालोंके साथ गाय चराने चले आये। यमुनाके तटपर आकर गौओं और बालकोंने उस विषाक्त जलको पी लिया, जिसे नागराज कालियने अपने विषसे दूषित कर दिया था। उस जलको पीकर बहुत-सी गायें और गोपगण प्राणहीन होकर पानीके निकट ही गिर पड़े। यह देख सर्वपापहारी साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णका चित्त दयासे द्रवित हो उठा। उन्होंने अपनी पीयूषपूर्ण दृष्टिसे देखकर उन सबको जीवित कर दिया। इसके बाद पीताम्बरको कमरमें कसकर बाँध लिया। फिर वे माधव तटवर्ती कदम्बवृक्षपर चढ़ गये और उसकी ऊँची डालसे उस विष-दूषित जलमें कूद पड़े। भगवान् श्रीकृष्णके कूदनेसे वह दूषितजल चक्कर काटकर ऊपरको उछला। यमुनाके उस भागमें कालियनाग रहता था। भँवर उठनेसे उस सर्पका भवन इस तरह चक्कर काटने लगा, जैसे जलमें पानीके भौंरे घूमते हैं। उस समय सौ फणोंसे युक्त फणिराज कालिय क्रुद्ध हो उठा और माधवको दाँतोंसे डँसते हुए उसने अपने शरीरसे उन्हें आच्छादित कर लिया। तब श्रीकृष्ण अपने शरीरको बड़ा करके उसके बन्धनसे छूट गये और उस सर्पराजकी पूँछ पकड़कर उसे इधर-उधर घुमाने लगे। घुमाते-घुमाते उन्होंने उसे पानीमें गिराकर पुनः दोनों हाथोंसे उठा लिया और तुरंत उसे सौ धनुष दूर फेंक दिया। उस भयानक नागराजने पुनः उठकर जीभ लपलपाते हुए रोषपूर्वक माधव श्रीहरिका बायाँ हाथ पकड़ लिया। तब श्रीहरिने उस महादुष्टको दाहिने हाथसे पकड़कर उस जलमें उसी प्रकार दबा दिया, जैसे गरुड किसी नागको रगड़ दे। फिर अपने सौ मुखोंको बहुत अधिक फैलाकर वह सर्प उनके पास आ गया। तब उसकी पूँछ पकड़कर श्रीकृष्ण उसे सौ धनुष दूर खींच ले गये। श्रीकृष्णके हाथसे सहसा निकलकर उसने पुनः उन्हें डँस लिया। यह देख अपनेमें त्रिभुवनका बल धारण करनेवाले श्रीहरिने उस सर्पको एक मुक्का मारा। श्रीकृष्णके मुक्केकी चोट खाकर वह सर्प मूर्च्छित हो अपनी सुध-बुध खो बैठा। तदनन्तर अपने सौ मुखोंको आनत करके वह श्रीकृष्णके सामने स्थित हुआ। उसके सौ फन सौ मणियोंके प्रकाशसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ते थे। श्रीकृष्ण उन फनोंपर चढ़ गये और मनोहर नट-वेष धारण करके नटकी भाँति नृत्य करने लगे। उस समय नटराजकी भाँति सुन्दर ताण्डव करनेवाले श्रीकृष्णके ऊपर देवतालोग फूल बरसाने लगे और प्रसन्नतापूर्वक वीणा, ढोल, नगारे तथा बाँसुरी बजाने लगे। तालके साथ पदविन्यास करनेसे श्रीकृष्णने लम्बी साँस खींचते हुए महाकाय कालियके बहुत-से उज्ज्वल फनोंको भग्न कर दिया। उसी समय भयसे विह्वल हुई नागपत्नियाँ आ पहुँचीं और भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार करके गद्‌गद वाणीद्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगीं—भगवन्! आप परिपूर्णतम परमात्मा तथा असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति हैं। आप गोलोकनाथ श्रीकृष्णचन्द्रको हमारा बारम्बार नमस्कार है। व्रजके अधीश्वर आप श्रीराधावल्लभको नमस्कार है। नन्दके लाला एवं यशोदानन्दनको नमस्कार है। परमदेव! आप इस नागकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इसे शरण देनेवाला नहीं है। आप स्वयं साक्षात् परात्पर श्रीहरि हैं और लीलासे ही स्वच्छन्दतापूर्वक नाना प्रकारके श्रीविग्रहोंका विस्तार करते हैं।

अबतक कालियनागका गर्व चूर्ण हो गया था। नागपत्नियोंद्वारा किये गये इस स्तवनके पश्चात् वह श्रीकृष्णसे बोला—'भगवन्! पूर्णकाम परमेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये।' 'पाहि-पाहि' कहता हुआ कालियनाग भगवान् श्रीहरिके सम्मुख आकर उनके चरणोंमें गिर पड़ा। तब उन जनार्दनदेवने उससे कहा—तुम अपनी पत्नियों और सुहृदोंके साथ रमणकद्वीपमें चले जाओ। तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणोंके चिह्न बन गये हैं, इसलिये अब गरुड तुम्हें अपना आहार नहीं बनायेगा। [गर्गसंहिता]

शिव-तत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गतांक २ पृ०-सं० ८ से आगे]

विज्ञानानन्दघन परमात्माके वेदोंमें दो स्वरूप माने गये हैं। प्रकृतिरहित ब्रह्मको निर्गुण ब्रह्म कहा गया है और जिस अंशमें प्रकृति या त्रिगुणमयी माया है, उस प्रकृतिसहित ब्रह्मके अंशको सगुण कहते हैं। सगुण ब्रह्मके भी दो भेद माने गये हैं—एक निराकार, दूसरा साकार। उस निराकार सगुण ब्रह्मको ही महेश्वर, परमेश्वर आदि नामोंसे पुकारा जाता है। वही सर्वव्यापी, निराकार, सृष्टिकर्ता परमेश्वर स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तीनों रूपोंमें प्रकट होकर सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहार किया करते हैं। इस प्रकार पाँच रूपोंमें विभक्त-से हुए परात्पर, परब्रह्म परमात्माको ही शिवके उपासक सदाशिव, विष्णुके उपासक महाविष्णु और शक्तिके उपासक महाशक्ति आदि नामोंसे पुकारते हैं। श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण आदि सभीके सम्बन्धमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं। शिवके उपासक नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुण ब्रह्मको सदाशिव, सर्वव्यापी, निराकार; सगुण ब्रह्मको महेश्वर; सृष्टिके उत्पन्न करनेवालेको ब्रह्मा; पालनकर्ताको विष्णु और संहारकर्ताको रुद्र कहते हैं और इन पाँचोंको ही शिवका रूप बतलाते हैं। भगवान् विष्णुके प्रति भगवान् महेश्वर कहते हैं—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलोऽपि सदा हरे॥
यथा च ज्योतिषः सङ्गाज्जलादेः स्पर्शता न वै।
तथा ममागुणस्यापि संयोगाद्बन्धनं न हि॥
यथैकस्या मृदो भेदो नाम्नि पात्रे न वस्तुतः।
यथैकस्य समुद्रस्य विकारो नैव वस्तुतः॥
एवं ज्ञात्वा भवद्भ्यां च न दृश्यं भेदकारणम्।
वस्तुतः सर्वदृश्यं च शिवरूपं मतं मम॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत्॥
तथापीह मदीयं वै शिवरूपं सनातनम्।
मूलभूतं सदा प्रोक्तं सत्यं ज्ञानमनन्तकम्॥

(शिव० ज्ञान० ४।४१, ४४, ४८—५१)

'हे विष्णो! हे हरे!! मैं स्वभावसे निर्गुण होता हुआ भी संसारकी रचना, स्थिति एवं प्रलयके लिये रज, सत्त्व आदि गुणोंसे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—इन नामोंके द्वारा तीन रूपोंमें विभक्त हो रहा हूँ। जिस प्रकार जलादिके संसर्गसे अर्थात् उनमें प्रतिबिम्ब पड़नेसे सूर्य आदि ज्योतियोंमें उसका सम्पर्क नहीं होता, उसी प्रकार मुझ निर्गुणका भी गुणोंके संयोगसे बन्धन नहीं होता। मिट्टीके नाना प्रकारके पात्रोंमें केवल नाम और आकारका ही भेद है, वास्तविक भेद नहीं है—एक मिट्टी ही है। समुद्रके भी फेन, बुदबुदे, तरंगादि विकार लक्षित होते हैं; वस्तुतः समुद्र एक ही है। यह समझकर आपलोगोंको भेदका कोई कारण न देखना चाहिये। वस्तुतः सम्पूर्ण दृश्य पदार्थ शिवरूप ही हैं, ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ये ब्रह्माजी और आगे चलकर मेरी जो रुद्रमूर्ति उत्पन्न होगी—ये सब एकरूप ही हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। भेद ही बन्धनका कारण है। फिर भी यहाँ मेरा यह शिवरूप नित्य, सनातन एवं सबका मूलस्वरूप कहा गया है। यही सत्य, ज्ञान एवं अनन्तरूप गुणातीत परब्रह्म है।'

साक्षात् महेश्वरके इन वचनोंसे उनका '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**'—नित्य विज्ञानानन्दघन निर्गुणरूप, सर्वव्यापी, सगुण, निराकाररूप और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप—ये पाँचों सिद्ध होते हैं। यही सदाशिव पंचवक्त्र हैं।

इसी प्रकार श्रीविष्णुके उपासक निर्गुण परात्पर ब्रह्मको महाविष्णु, सर्वव्यापी, निराकार, सगुण ब्रह्मको वासुदेव तथा सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले रूपोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। महर्षि पराशर भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे॥
एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥
सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥

आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्।
प्रणम्य सर्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥

(विष्णु० १।२।१—५)

'निर्विकार, शुद्ध, नित्य, परमात्मा, सर्वदा एकरूप, सर्वविजयी हरि, हिरण्यगर्भ, शंकर, वासुदेव आदि नामोंसे प्रसिद्ध संसार-तारक, विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लयके कारण, एक और अनेक स्वरूपवाले, स्थूल, सूक्ष्म—उभयात्मक व्यक्ताव्यक्तस्वरूप एवं मुक्तिदाता भगवान् विष्णुको मेरा बारम्बार नमस्कार है। जो जगन्मय भगवान् इस संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं विनाशके मूलकारण हैं, उन सर्वव्यापी भगवान् वासुदेव परमात्माको मेरा नमस्कार है। विश्वाधार, अत्यन्त सूक्ष्मसे अति सूक्ष्म, सर्वभूतोंके अन्दर रहनेवाले, अच्युत पुरुषोत्तम भगवान्को मेरा प्रणाम है।'

यहाँ अव्यक्तसे निर्विकार, नित्य शुद्ध परमात्माका निर्गुण स्वरूप समझना चाहिये। व्यक्तसे सगुण स्वरूप समझना चाहिये। उस सगुणके भी स्थूल और सूक्ष्म—दो स्वरूप बतलाये गये हैं। यहाँ सूक्ष्मसे सर्वव्यापी भगवान् वासुदेवको समझना चाहिये, जो कि ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी मूल कारण हैं एवं सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म पुरुषोत्तम नामसे बतलाये गये हैं तथा स्थूलस्वरूप यहाँ संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महेशके वाचक हैं, जो कि हिरण्यगर्भ हरि और शंकरके नामसे कहे गये हैं। इन्हीं सब वचनोंसे श्रीविष्णुभगवान्के उपर्युक्त पाँचों रूप सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार भगवती महाशक्तिकी स्तुति करते हुए देवगण कहते हैं—

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमयि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(मार्कण्डेय० ९१।१०)

'ब्रह्मा, विष्णु और महेशके रूपसे सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाश करनेवाली हे सनातनी शक्ति! हे गुणाश्रये! हे गुणमयी नारायणी देवी! तुम्हें नमस्कार हो।'

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजस्स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥

(ब्रह्मवै० प्रकृति० २।६६।७—१०)

'तुम्हीं विश्वजननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्हीं सृष्टिकी उत्पत्तिके समय आद्याशक्तिके रूपमें विराजमान रहती हो और स्वेच्छासे त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुतः तुम स्वयं निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एवं सनातनी हो; परमतेजःस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके हेतु शरीर धारण करनेवाली हो; तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार एवं परात्पर हो। तुम सर्वबीजस्वरूप, सर्वपूज्या एवं आश्रयरहित हो। तुम सर्वज्ञ, सर्वप्रकारसे मंगल करनेवाली एवं सर्वमंगलोंका भी मंगल हो।'

ऊपरके उद्धरणसे महाशक्तिका विज्ञानानन्दघन-स्वरूपके साथ ही सर्वव्यापी सगुण ब्रह्म एवं सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और विनाशके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवके रूपमें होना सिद्ध है।

इसी प्रकार ब्रह्माजीके बारेमें कहा गया है—

जय देवाधिदेवाय त्रिगुणाय सुमेधसे।
अव्यक्तजन्मरूपाय कारणाय महात्मने॥
एतत्त्रिभावभावाय उत्पत्तिस्थितिकारक।
रजोगुणगुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्॥
सत्त्वपाल महाभाग तमः संहरसेऽखिलम्।

(देवीपुराण ८३।१२—१४)

'आपकी जय हो। उत्तम बुद्धिवाले, अव्यक्त-व्यक्तरूप त्रिगुणमय, सबके कारण, विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारकारक ब्रह्मा, विष्णु और महेशरूप तीनों भावोंसे भावित होनेवाले महात्मा देवाधिदेव ब्रह्मदेवके लिये नमस्कार है। हे महाभाग! आप रजोगुणसे आविष्ट होकर हिरण्यगर्भरूपसे चराचर संसारको उत्पन्न करते हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त होकर विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं तमोमूर्ति धारण करके रुद्ररूपसे सम्पूर्ण संसारका संहार करते हैं।'

उपर्युक्त वचनोंसे ब्रह्माजीके भी परात्पर ब्रह्मसहित पाँचों रूपोंका होना सिद्ध होता है। अशक्तसे तो परात्पर परब्रह्मस्वरूप एवं कारणसे सर्वव्यापी, निराकार सगुणरूप तथा उत्पत्ति, पालन और संहारकारक होनेसे ब्रह्मा,

विष्णु, महेशरूप होना सिद्ध होता है।

इसी तरह भगवान् श्रीरामके प्रति भगवान् शिवके वाक्य हैं—

एकस्त्वं पुरुषः साक्षात् प्रकृतेः पर ईर्यसे।
यः स्वांशकलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम्।
एक एव त्रिधा रूप गृह्णासि कुहकान्वितः॥
सृष्टौ विधातृरूपस्त्वं पालने स्वप्रभामयः।
प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः॥

(पद्म० पाता० ४६।६—८)

'आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् अद्वितीय पुरुष कहे जाते हैं, जो अपनी अंशकलाके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूपसे विश्वकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करते हैं। आप अरूप होते हुए भी अखिल विश्वके परम कारण हैं। आप एक होते हुए भी माया-संवलित होकर त्रिविध रूप धारण करते हैं। संसारकी सृष्टिके समय आप ब्रह्मारूपसे प्रकट होते हैं, पालनके समय स्वप्रभामय विष्णुरूपसे व्यक्त होते हैं और प्रलयके समय मुझ शर्व (रुद्र)-का रूप धारण कर लेते हैं। [**क्रमशः**]

संतवाणी—

स्मरण तथा चिन्तनयोग्य विचार

❀ वाणीपर नियन्त्रण कर पाना ही संसार-बन्धनसे मुक्ति पानेका सबसे सरल उपाय है।

❀ जो अपनी जिह्वापर नियन्त्रण नहीं रख सकता, वह मनपर नियन्त्रण कैसे कर सकता है?

❀ वाक्य या शब्द मुँहसे निकलनेपर पीछे लौटाना असम्भव है।

❀ सदा ही अपनी या अपनोंकी प्रशंसा करते रहना और परस्पर चर्चामें भी अपनी चर्चा चलाते रहना बुद्धिमत्ता नहीं है। यह दूसरोंकी दृष्टिमें अपनेको गिराना है।

❀ जिह्वापर सबसे अधिक नियन्त्रण होना चाहिये। आनन्द खानेमें नहीं खिलानेमें है तथा बोलनेकी कलासे सुननेकी क्षमता सदा श्रेष्ठ है।

❀ गम्भीरता तथा विचारोंकी पवित्रता परम आवश्यक है।

❀ सदा शान्त, धीर रहनेका प्रयास ही सबसे बड़ी तपस्या है।

❀ किसीके घरमें जगह बना लेना सरल है, परंतु हृदयमें स्थान पाना अत्यन्त कठिन है।

❀ यदि हम किसीका भला नहीं कर सकते तो किसीका बुरा करनेका क्या अधिकार है?

❀ यदि हम किसीकी प्रशंसा नहीं कर सकते तो निन्दा करनेका क्या अधिकार है?

❀ दूसरोंके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये, जैसा हम दूसरोंसे चाहते हैं।

❀ जबतक हममें क्षमा करनेकी शक्ति नहीं है, भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती।

❀ हमको मनकी शान्ति तभी प्राप्त होगी, जब हम किसीके मनको अशान्त न करें।

❀ कठिनाइयों तथा विपदाओंको सहना ही जीवन है। सुखके दिन तो अंगुलियोंपर गिने जा सकते हैं।

❀ सबसे मुख्य वस्तु धैर्य है। सभी परिस्थितियोंमें वह धारण करनेयोग्य है।

❀ शत्रुसे शत्रुता समाप्त हो सकती है, लेकिन विश्वासघाती मित्रसे दुबारा मित्रता नहीं हो सकती।

❀ शुभ भावनाओंका मनमें आना ही शान्ति-प्राप्तिका संकेत है।

❀ अधिक चिन्ता करनेसे मनकी शक्ति क्षीण होती है।

❀ स्वार्थ तथा अहंकार प्रगतिमें बाधक है, मनकी अशान्ति तथा पतनका कारण है। प्रभुका कृपापात्र द्वेष करनेवाला नहीं, दयावान् होता है।

❀ आँखोंमें तेज उसीके रहता है, जो सच्चाईपर रहता है 'सत्यमेव जयते'।

❀ जो मनुष्य विचारपूर्ण जीवन व्यतीत करता है, उसमें ही मनुष्यत्व है।

❀ धनवान् वह नहीं जिसके पास अधिक धन है, धनवान् वह है, जिसके पास पवित्र मन है।

[**प्रस्तुति—श्रीहृदयनाथजी चतुर्वेदी**]

परदोष-दर्शन—घाटेका सौदा

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥

(रा०च०मा० ७। ५८)

गरुड़जी चिन्तामें पड़ गये, यह सोचकर कहने लगे—

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥

(रा०च०मा० ७। ६८ख)

कारण क्या है?

जिनका नाम लेकर लोग भवबन्धनसे छूट जाते हैं, वे ही श्रीराम नागपाशमें बाँध लिये गये।

मोह सताता है तो उसका निरसन होना ही चाहिये।

वे पहुँचे शिवजीके पास।

उन्होंने गरुड़जीको भेज दिया कागभुशुण्डिके पास। सोचा—

समुझइ खग खगही कै भाषा।

(रा०च०मा० ७। ६२। ९)

× × ×

कागभुशुण्डिजीने अपने बुद्धिबलसे—ज्ञानसे श्रीरामकथा कहकर, समझाकर गरुड़जीके मोहका निरसन कर दिया।

प्रसन्न हो गये गरुड़जी। पर फिर भी कुछ शंकाएँ तो बनी ही रह गयीं। अद्भुत गोरखधंधा होता है शंकाओंका। अन्ततोगत्वा लौटते-लौटते उन्होंने तकाजा कर ही तो दिया—

सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी।

(रा०च०मा० ७। १२१। २)

और कागभुशुण्डिजी तो बैठे ही थे शंका-समाधानके लिये। गरुड़जीका पहला प्रश्न था—

कवन पुन्य श्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥

(रा०च०मा० ७। १२१। ६)

भुशुण्डिजीने उत्तर दिया—

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा॥

(रा०च०मा०। १२०। २२)

अर्थात्—

अहिंसासे बढ़कर कोई पुण्य नहीं।
परनिंदासे बढ़कर कोई पाप नहीं।

× × ×

भुशुण्डिजी इतना ही कहकर चुप नहीं हो गये।

उन्होंने निन्दकोंका श्रेणी-विभाजन भी कर दिया कि कौन प्रथम श्रेणी, कौन द्वितीय श्रेणी और तृतीय श्रेणीमें है तथा उन्हें चित्रगुप्तके दरबारमें कैसा और क्या दण्ड मिलता है! उन्होंने बताया कि किसे किस योनिमें और किस नरकमें जाना पड़ता है—

हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्त्र पाव तन सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमइ बायस सरीर धरि॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी॥
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥
सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥

(रा०च०मा० ७। १२१। २३—२७)

मतलब!

निन्दा आपने की कि नरकका दरवाजा खुला।

हरिकी निन्दा हो या हरकी, गुरुकी निन्दा हो या गोविन्दकी, सुरकी निन्दा हो या भूसुरकी, वेद-शास्त्रकी निन्दा हो या संत-महात्माकी अथवा किसीकी भी निन्दा हो—नरक तो भोगना ही पड़ेगा और नाना प्रकारकी योनियोंमें चक्कर भी लगाना पड़ेगा। कोई मेढक बनेगा तो कोई कौआ, कोई उल्लू बनेगा तो कोई चमगादड़।

इसीसे कहा गया है—

पर निंदा सम अघ न गरीसा॥

× × ×

धर्मभीरु लोगोंकी बात तो निराली है। आधुनिक मानव—'अपटूडेट', 'माडर्न' मानव तो स्वर्ग और नरककी बातोंको हवामें उड़ा देता है। कहता है—तुम

भी कहाँका पँवारा ले आये!

को जानै को जैहै जमपुर, को सुरपुर परधामको।

अजी! छोड़ो इन दकियानूसी पुराणपंथी बातोंको। बेवकूफोंको बरगलानेके लिये ये अच्छी हैं। हमें तो प्रत्यक्ष व्यवहारकी बात जँचती है। निन्दासे तो हमें तत्काल लाभ दीखता है। क्या खूब नगद सौदा है, उस हाथ दे, इस हाथ ले!

निन्दासे तो हमें प्रत्यक्ष लाभ होता है—अच्छी नौकरी मिल जाती है। नौकरीमें तरक्की हो जाती है। हमारा बॉस—मालिक हमसे प्रसन्न रहता है। हमारी आमदनी बढ़ती है। हमारा ठाट-बाट और वैभव बढ़ता है। परिणामस्वरूप समाजमें हमारी प्रतिष्ठा बढ़ती है। चुनावमें खड़े होनेपर हमें अच्छे वोट मिलते हैं। हमारा रुतबा बढ़ता है। हमारा पद और सम्मान बढ़ता है—फिर हम यह बढ़िया फसल काटनेसे क्यों चूकें? जिस सौदेमें हमें फायदा-ही-फायदा है, उसे हम क्यों छोड़ दें?

आजके जमानेमें निन्दासे बहुतोंको लाभ दीखता है। पर वस्तुतः वह लाभ है नहीं।

मेरा कहना है कि निन्दा तो सर्वथा घाटेका सौदा है। आप पूछेंगे—'सो कैसे?'

तो सुनिये—

बात है सन् १८४२ के शरत्कालकी—अमेरिकाकी। 'स्प्रिंगफील्ड जर्नल' नामके समाचारपत्रमें एक गुमनाम चिट्ठी छपी। बड़ी चटपटी चिट्ठी थी वह।

जेम्स शील्ड्स नामक व्यक्तिकी बड़ी खिल्ली उड़ायी गयी थी उस चिट्ठीमें।

सारे नगरमें उस चिट्ठीकी चर्चा थी। लोगोंकी मुख्य वार्ताका विषय बन गयी वह चिट्ठी।

आयरिश राजनीतिज्ञ शील्ड्स आग-बबूला हो गया उस चिट्ठीको पढ़कर। लेखकका पता लगना कठिन तो था, फिर भी उसने पता लगा ही लिया।

वह जा पहुँचा अब्राहम लिंकनके पास और जाते ही गरजा—'तुमने छपायी है यह गुमनाम चिट्ठी?'

लिंकन कुछ जवाब देते, इसके पहले ही शील्ड्स गुर्राया—'तुम्हारी यह मजाल? तुम्हें मुझसे द्वन्द्व-युद्ध करना पड़ेगा। अब या तो तुम्हीं रहोगे या मैं ही।'

लिंकनने लाख कोशिश की द्वन्द्व टालनेकी, पर शील्ड्स अड़ गया और बोला—'द्वन्द्व-युद्ध तो तुम्हें करना ही होगा। मैं छोड़नेवाला नहीं। बोलो, लड़नेके लिये कौन-सा शस्त्र चुनते हो?'

लिंकनको आखिर चुनौती स्वीकार करनी पड़ी। अपनी लंबी बाँहोंकी बात सोचकर उसने अश्वारोही चौड़ी तलवार पसंद की।

असिकलामें लिंकन प्रवीण न था, पर मरता क्या न करता? उसने एक प्रवीण व्यक्तिके पास जाकर तलवार चलानेकी कला सीख ली।

निश्चित तिथिपर मिसीसिपी नदीके तटवर्ती बालुका-क्षेत्रमें दोनों नौजवान दो-दो हाथ करनेके लिये आ पहुँचे।

भला हो उनके सहायकोंका, जिन्होंने ऐन मौकेपर दोनोंको समझा-बुझाकर इस द्वन्द्वको टाल दिया, वरना कौन कह सकता है कि लिंकनका क्या होता? सम्भव था कि अमेरिका ऐसे उदार, दयालु और तेजस्वी राष्ट्रपतिकी सेवाओंसे वचिंत रह जाता।

हाँ, इस द्वन्द्वने लिंकनको एक अविस्मरणीय पाठ पढ़ा दिया—

'भूलकर भी किसीकी निन्दा न करो—न मुँहसे, न कलमसे, न प्रकट रूपसे, न प्रच्छन्न रूपसे।'

उसी दिनसे लिंकनने अपने जीवनकी पटरी बदल दी।

उसने अपने-आपपर संयमकी ऐसी कड़ी बाड़ लगायी कि जब वह राष्ट्रपति बना और गृहयुद्धमें जब एक-एक कर सभी सेनापति मैकक्लान, वर्नसाइड, मीड आदि—गलती-पर-गलती करते गये, तब भी वह शान्त बना रहा।

मीडपर तो १८६२में वह झल्लाया भी और उसने गुस्सेसे भरा एक पत्र भी लिख डाला। पर वह पत्र मीडको कभी पढ़नेको नहीं मिला।

लिंकनकी मृत्युके बाद उसकी फाइलके कागजोंमें यह पत्र दबा हुआ मिला। पत्र अवश्य लिख डाला था लिंकनने पर उसे भेजा नहीं—यह सोचकर कि 'शायद मीडका कोई दोष न हो। युद्धके मैदानसे इतनी दूर रहकर मीडकी कठिनाईको मैं कैसे समझ सकता हूँ।'

× × ×

निन्दासे कुछ तात्कालिक लाभ भले ही दीखे, पर उसकी विष-बेलमें घृणा, द्वेष और वैर-विरोधके ही कँटीले फल लगते हैं।

निन्दाके कारण दाँतकटी रोटीवाले मित्र एक-दूसरेके जानी दुश्मन बन जाते हैं। एक-दूसरेके लिये हँसते-हँसते जान न्यौछावर करनेवाले दोस्त परस्पर मुँह नहीं देखना चाहते। एक दिन जो प्यारे-से-प्यारे थे, उन्हींको दूसरे दिन मिट्टीका तेल डालकर फूँक देनेमें रत्तीभर भी संकोच नहीं होता। जिन्हें देखे बिना पल-पल कटना दूभर था, बरसों उनसे दुआ-सलाम भी नहीं होती—ऐसी बुरी होती है निन्दा।

निन्दाके चलते आर्थिक क्षति तो अपार होती ही है, सामाजिक क्षति भी कम नहीं होती। मानसिक और आत्मिक क्षतिका तो पार ही नहीं रहता। मानव सहज ही पतनकी ओर फिसलने लगता है। यह दशा तो सामान्य मानवकी है, साधककी तो सारी साधना ही मिट्टीमें मिल जाती है।

× × ×

परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि,
तेहि पावक न दहौंगो।

—ऐसा कहनेवाले साधक और—

सहै कुसब्द, बादहू त्यागे छाँड़े गरब गुमाना।

ऐसे संतोंकी बात छोड़िये। वे तो कहते हैं—

निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।

पर सामान्य मानवपर, हम सबपर निन्दाकी वैसी ही प्रतिक्रिया होती है, जैसी शील्ड्सपर हुई। किसीको अपनी निन्दा करते देख-सुनकर हम तुरंत अपने मनका संतुलन खो बैठते हैं। हम उखड़ जाते हैं, तावमें आ जाते हैं, बौखला उठते हैं और इतने आवेशमें आ जाते हैं कि वश चले तो निन्दककी जीभ पकड़कर खींच लें।

हम किसीसे सुनभर लें कि अमुकने हमारी निन्दा की है, बस, तुरंत हम उसके विरुद्ध मोरचेबन्दी शुरू कर देते हैं। दुर्दान्त डाकू, बड़े-से-बड़े बदमाश और अपराधी भी पकड़े जानेपर अपनेको 'दूधका धोया' बताते हैं।

निन्दाका बदला केवल निन्दासे ही नहीं चुकाया जाता, अपितु उसके साथ मार-पीट तो मामूली तौरपर जुड़ ही जाती है, तीर-तलवार और बन्दूक-पिस्तौल भी निकल जाती है। राग-द्वेषकी जड़ें दिन-दिन गहरी होती जाती हैं। वैरका विष-वृक्ष खूब फूलता-फलता रहता है—कभी-कभी पुश्त-दर-पुश्त!

इससे बढ़कर घाटेका सौदा और होगा ही क्या?

मानवकी माँग

मानव-जीवनकी तीन विभूतियाँ हैं—

निश्चिन्तता, निर्भयता और प्रियता।

❖ जो कुछ और हो रहा है, वह मंगलमय विधानसे हो रहा है—ऐसा मान लेनेपर निश्चिन्तता आती है।

❖ जो शरीर, प्राण आदि किसी भी वस्तुको अपना नहीं मानता, वह निर्भय हो जाता है।

❖ जो 'है' वही मेरा अपना है—इसमें जिसने आस्था स्वीकार कर ली, उसीमें प्रियता उदित होती है।

निश्चिन्ततासे शान्ति, निर्भयतासे स्वाधीनता तथा प्रियतासे रसकी अभिव्यक्ति होती है। यही मानवकी माँग है।—ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज

भजनमें एक बड़ी बाधा

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

यद्यपि भगवान्‌पर विश्वास करके उनके अनन्य शरण हो जानेपर मनुष्यके सारे दोष अपने-आप समूल नष्ट हो जाते हैं और उसके समस्त योगक्षेमका वहन भगवान् स्वयं करते हैं, परंतु ऐसी स्थिति बहुत सहज नहीं है। सच्चे साधनके फलसे नित्य भगवत्कृपाका अनुभव होनेपर ही भगवान्‌में पूर्ण और अलौकिक विश्वास पैदा होता है और तभी मनुष्य अपने समस्त बल, लोक-परलोक और भोग-मोक्ष सब प्रभुके चरणोंपर अर्पण करके उनके अनन्य शरण होता है। क्षणविश्वासी या अल्पविश्वासी साधारण लोग इस अवस्थासे बहुत दूर रहते हैं। वे भगवान्‌के गुण और माहात्म्यको सुनकर कभी-कभी विश्वासकी ओर कुछ झुकते हैं, परंतु पर्याप्त आगे बढ़नेसे पहले ही कई प्रकारकी बाधाएँ प्राप्तकर रुक जाते हैं। इन बाधाओंमें कुछ तो पूर्वकर्मोंके प्रतिबन्धक होते हैं और कुछ वर्तमान कालके संग, स्थिति आदिके कारण उत्पन्न हुई रुकावटें होती हैं। ये बाधाएँ अनेक हैं, परंतु इस समय साधारणतः उनमेंसे धनकी चिन्ता एक प्रधान बाधा है। धनकी चिन्ताका कारण उदरपूर्ति या परिवार-पालन ही कहा जाता है, परंतु वास्तवमें मूलकारण दूसरा है—वह है, हमारी कामभोगपरायणता। विषयोंके उपभोगको ही परम पुरुषार्थ और परम आनन्द माननेवाले मनुष्योंकी चिन्ताएँ मृत्युकालतक भी दूर नहीं होतीं; क्योंकि ऐसे लोग अपनी स्थितिके अनुकूल साधारण सादा जीवन बिताना भूल जाते हैं। फलस्वरूप उन्हें रात-दिन धनकी इतनी चिन्ता करनी पड़ती है कि उसके सामने भगवान् और धर्मका चिन्तन या विचार तुच्छ, अनावश्यक और कभी-कभी त्याज्य हो जाता है और वे सब कुछ भूल कामक्रोधपरायण होकर अन्यायपूर्वक धनसंग्रहके कार्यमें लग जाते हैं। यों करते-करते ही उनके जीवनके दिन पूरे हो जाते हैं। बहुमूल्य मनुष्य-जीवन पाप-ताप बटोरनेमें ही व्यर्थ बीत जाता है। यह इतनी बड़ी हानि होती है, जिसकी बड़ी कठिनतासे भी पूर्ति नहीं होती और समय हाथसे निकल जानेपर पीछे बेहद पछताना पड़ता है।

मनुष्य यदि चाहे तो प्रारब्ध या संचित-जनित प्रतिबन्धकोंको भी दूर कर सकता है, पर वर्तमान कालके संग और स्थितिसे उपजी हुई बाधाओंको तो मिटानेमें कोई सन्देह ही नहीं है। यदि वह संगको बदल डाले और हृदयमें कुछ बल संचय करके कुसंग और दुर्बलतावश होनेवाले प्रमाद और अकर्तव्य कार्योंको छोड़ दे तो ये बाधाएँ सहज ही दूर हो सकती हैं। वास्तवमें हमें अपने और परिवारके लिये साधारणतः अन्न-वस्त्र संग्रह करनेमें उतनी कठिनता नहीं है। कठिनता तो यह है कि हमने अपनी आवश्यकताएँ बहुत अधिक बढ़ा ली हैं और उनकी किसी-न-किसी प्रकार पूर्ति करनेमें ही कर्तव्यकी इतिश्री समझ रखी है। यदि हम ध्यान देकर देखें तो व्यक्तिगत और समाजगत ऐसे हजारों अवसर हैं, जिनमें हम बहुत धन खर्च किया करते हैं, परंतु जहाँ बिना खर्च किये ही काम मजेमें चल सकता है, ऐसे अवसरोंपर खर्च करनेकी आवश्यकता हमने उत्पन्न कर ली है, वस्तुतः है नहीं। खाने-पहनने तथा गृहस्थीके दूसरे-दूसरे कार्योंके लिये हम ऐसी बहुत-सी चीजें खरीदते हैं, जिनके न खरीदनेसे हमें अपने जीवनयापनमें कोई रुकावट नहीं होती। उदाहरणके लिये, मनुष्यका दो कपड़ोंमें काम चल सकता है, पर वह चार-पाँच पहनता है, खानेमें मिठाई अथवा बहुत तरहकी तरकारी, अचार आदिके बिना कोई अचड़न नहीं होती, परंतु इनमें बहुत व्यय किया जाता है! छोटे साफ मकानमें रहा जा सकता है, परंतु दिखावेके लिये बड़ी-बड़ी इमारतें बनवायी जाती हैं। शाल-दुशाले, इत्र-फुलेल, साबुन-क्रीम, फर्नीचर आदि हजारों प्रकारके शौकके सामानमें पानीकी भाँति पैसा बर्बाद किया जाता है। यह तो व्यक्तिगत बात हुई। समाजमें ब्याह-शादी, कर्णछेदन, जनेऊ, मरण आदिपर इतना बुरी तरह खर्च किया जाता है कि जिसका दुःख पीढ़ियोंतक भोगना पड़ता है। सैकड़ों अच्छे-अच्छे घराने इस व्यय-भारसे दबकर नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं। इधर वर्षोंसे खर्च घटानेकी तथा रीतियोंमें सुधारकी बात चल रही है और अनेक प्रकारके परिवर्तन भी हुए हैं, परंतु खर्चकी रकम घटनेके बदले बढ़ी है। खर्चके तरीके बदले हैं, खर्च नहीं घटा। बल्कि पहले जो कुछ खर्च किया जाता

था, वह प्राय: ऐसी चीजोंमें खर्च होता था, जो चीजें बुरे समयपर काम आती थीं और उनकी लागतसे कुछ कम कीमत, चाहे जब बेंचकर वसूल की जा सकती थी, परंतु अब तो जो कुछ खर्च होता है, वह प्राय: स्वाहा ही हो जाता है। फैशनने सबको तबाह कर दिया है। इस सारे अनर्थका कारण हमारी कामभोग-परायणताकी वृद्धि है और इसके छूटनेका असली उपाय विषय-वैराग्यपूर्वक ईश्वरपरायणता ही है। उस ईश्वरपरायणतामें भजनकी आवश्यकता है और भजन होनेमें यह धनकी 'हाय-हाय' बाधक हो रही है। अतएव अपना, समाजका और देशका लौकिक, पारलौकिक हित चाहनेवाले प्रत्येक मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह खर्च घटाये, जीवनमें सब ओर सादगीका व्यवहार करे, व्यक्तिगत और समाजगत धनकी फजूलखर्चीको दृढ़ता और बलके साथ नासमझीसे होनेवाली बदनामीको सहकर भी रोके। विवाह-शादीमें तो जो अनर्थ हो रहा है, सो बड़ा ही रोमांचकारी है। खर्चकी भयानकताके कारण लड़कियोंका ब्याह नहीं होने पाता और अच्छे-अच्छे परिवार इसके लिये दुखी हो रहे हैं। इसीके कारण प्राय: लड़के-लड़कियोंमें जन्मकालसे ही भेद-दृष्टि हो जाती है। जिसके कई लड़कियाँ हैं, उसका तो जीवन ही दु:खमय बन रहा है। ऐसी स्थितिमें प्रत्येक हृदयवान् गृहस्थको इस विषयपर विचार करके कर्तव्य स्थिर करना चाहिये। कन्याके माता-पिता क्या करें, उन्हें तो किसी प्रकार खेत-जमीन, घर-द्वार बन्धक रखकर वरके माता-पिताको राजी करना ही पड़ता है, परंतु वह हृदयका रक्त दिया जाता है, दहेज नहीं। मेरे मित्र एक सरयूपारी ब्राह्मण हैं, उनके घरमें कई कन्याएँ हैं, एक कन्या विवाहयोग्य है। उसकी उम्र लगभग २० सालकी हो गयी है, कन्या सुशीला है, बहुत अच्छे ब्राह्मण हैं, परंतु दहेजके अभावमें विवाह नहीं हो पाता। वे बड़े दुखी हो रहे हैं। दहेजके बिना तो कोई बात ही नहीं करता। यू०पी० के एक सज्जनका पत्र मिला है। वे पहले वकील थे। उनके एक कन्या है। वे लिखते हैं—'कन्या विवाह-योग्य हो गयी है, परंतु दहेजका प्रश्न सामने है। मैट्रिकपास बालकके पिता तो मोटर बिना बात नहीं करते।' यह पाप है। मैं 'कल्याण' के हृदयवान् उन पाठक-पाठिकाओंसे एक विनय करता हूँ कि जो घरमें सम्पन्न हैं और जो परमार्थके मार्गपर आगे बढ़ना चाहते हैं, वे अपनी व्यक्तिगत और समाजगत आवश्यकताओंको तुरंत कम कर दें और अपने लड़कोंका विवाह ढूँढ़-ढूँढ़कर बिना दहेज लिये गरीब माता-पिताकी सुयोग्य कन्याओंसे करनेकी प्रतिज्ञा करें। धर्मप्रेमी अविवाहित युवक भी प्रण करें कि वे अपना विवाह बिना दहेज लिये ही करेंगे। मेरा विश्वास है कि ऐसा करनेसे उन्हें परमार्थ-मार्गमें बड़ा लाभ होगा।

यह सामाजिक विषय होनेके कारण 'कल्याण' में इस सम्बन्धमें कुछ लिखना अनुचित समझा जा सकता है, परंतु यह निवेदन सामाजिक दृष्टिसे नहीं, शुद्ध परमार्थ-दृष्टिसे किया गया है और इसी दृष्टिसे 'कल्याण' के पाठकोंसे प्रतिज्ञा करनेकी प्रार्थना की गयी है; क्योंकि यह विषय भजनमें बड़ा ही बाधक सिद्ध हो रहा है और इस बाधाके दूर होनेकी बड़ी ही आवश्यकता है। क्या मैं आशा करूँ कि कल्याणके हजारों पाठकोंमेंसे कुछ तो ऐसी प्रतिज्ञा कर ही लेंगे?

वस्तुत: धन अत्यन्त ही तुच्छ पदार्थ है, प्रेमघन परमात्मारूपी धनकी तुलनामें तो यह रखा ही नहीं जा सकता। सूर्य और जुगुनूकी उपमा भी इसके लिये पर्याप्त नहीं है। इसलिये इस विषयमें वृत्तियोंके अधिक लगानेकी आवश्यकता नहीं है तथापि आज इस जड़-युगमें चारों ओर धनकी पूजा हो रही है और लोग धन-चिन्तामें पड़े हुए ईश्वरको भूल रहे हैं। इसीसे ऐसा लिखा गया है। धन कम खर्च करनेकी इस प्रार्थनासे यह नहीं समझना चाहिये कि इसमें धनका महत्त्व बतलाया गया है, वरं यह समझना चाहिये कि धन अत्यन्त तुच्छ पदार्थ है, व्यर्थ खर्चकर उसके उपार्जनमें समय लगाकर उसका महत्त्व बढ़ाना उचित नहीं! हम अपनी आवश्यकताओंको जितना कम करेंगे, उतना ही धनका महत्त्व घटेगा और उतना ही शीघ्र हम पाप-तापसे छूटकर परमात्माकी ओर अग्रसर हो सकेंगे। आवश्यकता ही धनकी लालसा उत्पन्नकर हमें दरवाजे-दरवाजेपर भटकाती और भगवान्से विमुख करती है। जिस दिन चाह मिट जायगी, उस दिन हम बादशाह बन जायँगे—

चाह गई चिन्ता गई मनुआँ बेपरवाह।
जिसको कछू न चाहिये सो जग शाहन्शाह॥

समुद्र-गर्जन

(संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल)

जानते हो, समुद्र रात-दिन क्यों गरजता है? वैज्ञानिक विद्वान् इसका कुछ उत्तर अवश्य देंगे, परंतु समुद्रके प्राणोंकी भीतरी बात बतलाना बड़ा ही कठिन है। समुद्रके प्राणोंमें आठों पहर कितनी व्याकुलता लहरें मारती हैं, इसका पता तो उसकी चंचलता देखते ही लग जाता है। 'होगी व्याकुलता, पर वह है तो जड़।' एक तरहसे क्या हम लोग भी जड़ नहीं हैं? पर उसके अन्दर भी वह चेतना तो है ही, जो सारे विश्वमें व्याप्त है, तब उसमें व्याकुलता क्यों नहीं रह सकती? 'वह बोल नहीं सकता', क्या इसीसे उसमें व्याकुलता नहीं है? शायद वह अपनी भाषामें बोलता हो, जिसको हम नहीं समझते। कीट-पतंगोंकी भी तो भाषा है, पर क्या वह सब हम समझते हैं? समझनेकी चेष्टा करनेपर शायद समझ सकते। बहुत-से पाश्चात्य पण्डितोंने पशु, पक्षी, कीट, पतंगोंकी भाषा समझनेकी चेष्टा की है और यह नहीं कहा जा सकता कि उनको कुछ भी सफलता नहीं मिली। हमारे यहाँ भी तो तपस्वी ऋषि दूसरे जीवोंकी भाषा समझ सकते थे। शकुन-शास्त्र देशमें अब भी कुछ वर्तमान है। जिस भाषामें हम बोलते हैं, उस भाषाको कितने मनुष्य समझते हैं? एक प्रान्तके मनुष्य दूसरे प्रान्तकी भाषा नहीं समझ सकते, पर एक ऐसी भाषा भी है, जो सब जीवोंकी एक भाषा है। उसका नाम है 'पश्यन्ती वाणी', ऋषिगण चित्तका संयम करनेपर इस अवस्थाको प्राप्त करते थे, उस देशकी भाषामें बाह्य शब्द नहीं हैं, परंतु वहाँ कहना-सुनना मजेमें चलता है। अवश्य ही पाश्चात्य पण्डितोंने पशु-पक्षियोंकी भाषा समझनेमें जो चेष्टा की, उसकी प्रणाली यह नहीं है, वह दूसरी है। उन लोगोंने बाहरी शब्दोंकी सहायतासे ही मनका भाव समझनेकी चेष्टा की है, परंतु उनकी यह प्रणाली असम्पूर्ण है। जो बोल सकते हैं, वे भी भाषामें मनके सारे भाव प्रकट नहीं कर सकते। भाषाकी वह पूर्णता अभी नहीं हो पायी है। कभी होगी या नहीं—यह भी नहीं कहा जा सकता।'

जो कुछ हो, मनुष्य है बड़ा अहंकारी जीव! इसीसे वह दूसरे किसी जगत्के ज्ञान, बुद्धि, भाव, भाषा आदिका स्वीकार नहीं करना चाहता, पर यह सब 'छातीके जोर' के सिवा और कुछ भी नहीं है। एक बाघ भी मनुष्यका गला पकड़कर उसका खून पीते हुए यह सोच सकता है कि मनुष्य अज्ञानी जीव है, ज्ञानी तो हम हैं। तभी तो इनका गला पकड़कर खून पी रहे हैं। वास्तवमें जहाँ भाव है, वहाँ भाषा भी है—यह बात समझ लेनी चाहिये। खैर, अब जरा समुद्रके प्राणोंकी बात समझनेकी चेष्टा कीजिये—मैं एक दिन समुद्रके किनारे बैठा उसकी तरंगोंके खेल देख रहा था, उसका गर्जन सुन रहा था। बहुत दूरतक फैली हुई उसकी वह सुनील जलराशि और शुभ्रफेण-विमण्डित तरंगमालाओंका उत्थान-पतन प्राणोंमें कैसे विलक्षण भावकी जागृति कर रहा था! समुद्रके उस सीमाहीन जलमें मेरी सीमाबद्ध इन्द्रियोंकी सारी शक्तियाँ डूबने लगीं। मेरे पास एक मनुष्य और बैठे थे, वे कहने लगे, 'बाबा! आठों पहर यहाँ तो यही शों-शों शब्द होता है, यहाँ भी कभी मन स्थिर हो सकता है?' मैंने यह शब्द सुनकर सोचा, अवश्य ही बाहरसे देखनेपर तो यही समझमें आता है, परंतु मैंने अनेक बार परीक्षा की है, समुद्रका गर्जन सुनकर एकबार चित्त अवश्य विक्षिप्त होता है, परंतु कुछ समयतक चुपचाप सुनते रहनेपर मनका कार्य स्वयमेव बन्द होने लगता है, फिर मन किसी भी दूसरे शब्दकी ओर नहीं जाना चाहता। क्रमशः जब उस शब्दमें और भी सूक्ष्म एकतानता हो जाती है तब तो बाहरके शब्दोंकी तरफ मन बिलकुल ही नहीं जाना चाहता। फिर देखा जाता है कि वह सूक्ष्म एकतानता हमारे प्राणोंमें और समुद्रमें क्रमशः जम रही है। इसके

बाद थोड़ी ही देरमें हमारी हृत्तन्त्रीके तार समुद्रके वीणा-तारोंके साथ एक साथ एकतानसे बज उठते हैं, केवल एक ही ध्वनि निकलती है। उस समय यह पहचानना कठिन हो जाता है कि कौन-सा स्वर किसका है?

फिर उसमें नीरवता छाने लगती है। सारे शब्द मानो एक महाशून्यमें मिलकर विलीन हो जाते हैं। समुद्रमें डुबकी लगानेपर भी ऊपरके शब्द कानोंतक नहीं पहुँचते। एक गम्भीर नीरवतामें समस्त चंचलता मानो सर्वथा शान्त हो जाती है। यहाँ सारे स्वर मिलकर एक अव्यक्तभावमें मिल जाते हैं और सारी भाषा एवं शब्दोंकी यहाँ समाप्ति हो जाती है। सबके 'सर्व' के साथ इस सुरको मिला दे सकनेपर कोई झंझट नहीं रह जाता। जीवके साथ जीवके सुर जहाँ मिलते हैं, ठीक वहीं बजानेपर सबके अन्दरसे एक-सा ही स्वर निकलता है। तब यह बात समझमें आती है कि हम सब सबके साथ अभिन्नभावसे एक हैं और एक ही जगहपर स्थित हैं। भगवान्‌के साथ भी इसी तरह सुर मिला देना चाहिये, यही तो उन्हें पानेका साधन है। उनके सुरके साथ जहाँ हमारे सुरका मिलान होता है, उस जगहका पता लगाना है तो हमें इस शब्द-मुखरित, वासना-विक्षोभित मन-समुद्रके अतल-तलमें डुबकी लगानी चाहिये। बार-बार डुबकियाँ लगाते-लगाते क्रमशः एक अव्यक्त अवस्थाका तत्त्व हम समझ सकेंगे। उस अवस्थामें इस जगत्‌के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—सभी एकाकार होकर एक साथ मिल जायँगे, एक गम्भीर एकतानतामें मनके सारे विक्षेप—सारी चंचलताएँ मूर्च्छित हो जायँगी! उस समय हमारे और विश्वके हृदयके साथ भगवान्‌के एक अखण्ड संयोगकी उपलब्धि होगी। निर्वात दीपशिखाकी तरह मन एकाग्र, निश्चल और स्तब्ध हो जायगा। इसी अवस्थाको योगी 'द्वन्द्वातीत' अवस्था कहते हैं। इसी अवस्थामें यथार्थ ज्ञानी और भक्त **'मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा'** मोदनीयको पाकर प्रमुदित होते हैं। उस समय अन्तःकरणमें जो मनोहर एकतान संगीत-ध्वनि होती है, उसे सुनते ही सारे बन्धन खुल जाते हैं। वह शब्द बड़ा ही मधुर, बड़ा ही प्राणोंको शीतल करनेवाला होता है। उदात्त-अनुदात्त स्वरोंमें, विश्व और मनुष्यके हृदयके साथ भगवान्‌का अनादि महिमान्वित एकतान सुर मिलकर सारे सुर एकसाथ एक स्वरसे बज उठते हैं, तब केवल सुनायी पड़ता है—ॐ ॐ ॐ!'

महान् वैज्ञानिककी विनम्रता

अलबर्ट आइंस्टीनने हमारे जगत्‌का चित्र ही बदल दिया। परमाणु युग, वह चाहे हमारे वृद्धि या विनाश—जिस किसीका भी हेतु क्यों न हो, उसके जनक आइंस्टीन ही रहे। उन दिनों जब वे परमाणु-बम-सम्बन्धी अनुसंधानमें व्यस्त थे, प्रायः व्यंग्य करते हुए कहते—'यदि मेरी खोज, मेरा सिद्धान्त ठीक सिद्ध हुआ तब तो जर्मनी मुझे महान् जर्मनवासी कहकर अभिनन्दन करेगा और फ्रांसवाले कहेंगे कि आइंस्टीन विश्वका महान् नागरिक है। पर यदि यह मिथ्या सिद्ध हुआ तो ये ही फ्रांसवाले मुझे जर्मनवासी कहने लगेंगे और जर्मनवाले मुझे यहूदी कहेंगे।'

१९५२ के नवम्बरमें इसराइलके अध्यक्ष डॉक्टर चैम वेजमेनकी मृत्युपर इसराइल सरकारने आइंस्टीनसे अध्यक्षता स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। पर उन्होंने यह कहकर उनके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया कि 'यद्यपि मैं आपके इस प्रस्तावका बड़ा आभारी हूँ, पर मैं इस पदके योग्य नहीं हूँ; क्योंकि जन-सेवा-कार्य तथा राजनीति क्षेत्रमें मैं अपनेको तनिक भी दक्ष अथवा कुशल नहीं मानता।'

इसपर इसराइलकी नवनिर्मित यहूदी सरकार आश्चर्यसे दंग रह गयी।

साधकोंके प्रति—

[दृढ़ निश्चयकी महत्ता]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

श्रीभगवान् कहते हैं—'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त हुआ मुझे निरन्तर भजता है तो उसे साधु ही समझना चाहिये; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

यह 'एक निश्चय' बहुत ऊँची श्रेणीकी बात है। घोर पापी एवं अत्यन्त दुराचारी भी यदि यह निश्चय कर ले कि 'अब चाहे जो कुछ भी हो जाय, मुझे केवल भगवत्प्राप्ति ही करनी है' तो उसे अवर्णनीय लाभ हो सकता है। ऐसा निश्चय करनेमें अभ्यास या अधिक समयकी अपेक्षा भी नहीं है, यह तत्काल—अभी-अभी हो सकता है; '**इहासने शुष्यतु मे शरीरम्**'—चाहे इसी आसनपर मेरा शरीर सूख जाय, किंतु मैं तो अपने लक्ष्यको प्राप्त करके ही रहूँगा।' भगवान् बुद्धका यह अटल निश्चय ही उनकी सिद्धिका मूल कारण था।

एक टिट्टिभीने समुद्रके किनारे अण्डे दिये। समुद्रमें ज्वार आया और उसके साथ उसके वे अण्डे भी बह गये। 'अरे! तुझ समुद्रकी यह मजाल!' उसने दृढ़ निश्चयके साथ कहा, 'मैं तुझे सुखा डालूँगी, अन्यथा मेरे अण्डे मुझे वापस लौटा दे।' समुद्रने कोई उत्तर नहीं दिया; अब तो टिट्टिभीके क्रोधका पार न रहा। अपने सुदृढ़ निश्चयके अनुसार उसने चोंचमें समुद्रका जल भर-भरकर किनारेसे दूर उड़ेलना और दूरसे बालू लाकर समुद्रमें भरना आरम्भ किया। उसके इस अद्भुत कर्मको देखकर किसीने उससे हँसते हुए पूछा—'अरी! तुम यह क्या कर रही हो?' टिट्टिभीने अपनी दुःखद कहानी सुनाकर दृढ़ताके साथ अपना कार्य पुनः प्रारम्भ कर दिया। इसपर प्रश्नकर्ताने उसे समझाया—'क्या कभी इस प्रकार समुद्र भी सुखाया जा सकता है?' टिट्टिभीने उत्तर दिया—

..........................चञ्चुर्मे लोहसंनिभा।
अहोरात्राणि दीर्घाणि समुद्रः किं न शुष्यति॥

(पंचतन्त्र १। ३५८)

'अहो! रात और दिन कितने लम्बे होते हैं, इधर मेरी चोंच भी कोई बहुत कमजोर नहीं! देखती हूँ, समुद्र कैसे नहीं सूखता है'—इस दृढ़ निश्चयमें अपरिमित शक्ति है। सांसारिक पदार्थोंसे लेकर परमात्मातककी प्राप्ति इस संकल्प-शक्तिसे सम्भव है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता ५। २५)

'जिनकी दुविधा नष्ट हो गयी है अर्थात् एक ही लक्ष्य स्थिर हो चुका है, संयतेन्द्रिय, पापरहित एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले पुरुष शान्त ब्रह्मकी प्राप्ति करते हैं।' सचमुच दुविधा साधककी उन्नतिमें बहुत बड़ी बाधा है। एक ओर वह सोचता है कि थोड़ा सांसारिक सुखोंका उपभोग कर लूँ और दूसरी ओर उसे परमात्म-तत्त्वकी प्राप्तिकी भी इच्छा होती है। यह भी हो जाय और वह भी—इस दुविधामें फँसकर वह लक्ष्य-प्राप्तिसे वंचित रह जाता है—***'दुविधामें दोनों गये माया मिली न राम।'***

निश्चयात्मिका बुद्धि एक होती है—'**करिष्ये वा मरिष्ये**—करेंगे या मरेंगे।' 'यह कार्य तो करना ही है, चाहे कुछ भी हो जाय'—पारमार्थिक मार्गमें इस प्रकारके दृढ़ निश्चयकी बड़ी आवश्यकता है। निश्चयात्मिका बुद्धि होनेपर भगवान्की कृपा साधकपर बरस पड़ती है।

इतना ही नहीं, परमार्थमें महान् बाधक कहा जानेवाला संसार भी उसका सहायक हो जाता है।

'मैं भी आपकी गोदमें बैठूँगा', महाराज उत्तानपादकी गोदमें खेलते हुए अपने छोटे भाई उत्तमको देखकर बालक ध्रुव मचल उठा। राजाके बोलनेसे पहले ही

छोटी रानी सुरुचिने ध्रुवको डाँटते हुए कहा—'अरे! तुझे राजाकी गोदमें बैठनेका अधिकार कहाँ? तूने तो उस अभागिनी सुनीतिके गर्भसे जन्म लिया है। यदि तूने पूर्वजन्ममें भगवान्‌का भजन किया होता तो मेरी कोखसे जन्म लेता और मेरे बेटेकी तरह तू भी राजाकी गोदमें खेलनेका अधिकारी बनता।'

नन्हा ध्रुव अपनी विमाताके इन अपमानजनक शब्दोंको सुनकर दु:ख एवं ग्लानिसे भर उठा। अपने पिताकी चुप्पी उसके हृदयको काट रही थी। वह रोता हुआ अपनी माँ (सुनीति)-के पास गया और सारी बातें उसे कह सुनायीं। माँने कहा, 'हाँ, बेटा! तेरी विमाता सत्य ही कहती है। तुमने और मैंने—दोनोंने ही यदि पूर्वजन्ममें भजन किया होता तो आज हमें दु:ख न देखना पड़ता।' उसकी भी आँखें भर आयीं।

'तब तो मैं भगवान्‌का भजन ही करूँगा।' यह कहकर नन्हा-सा ध्रुव घरसे निकल पड़ा। धन्य है वह जननी, जो अपनी संतानको भगवान्‌के भजनमें लगाती है। पाँच वर्षका बालक ध्रुव अपनी धुनमें चला जा रहा है—नंगे पाँव वनके कण्टकाकीर्ण मार्गोंपर। कुछ दूर जानेपर उसे देवर्षि नारद मिले, उन्होंने पूछा—'बेटा! तुम कहाँ जा रहे हो?' तोतली बोलीमें ध्रुवने सारी घटना सुनाकर रोते हुए कहा—'अब मैं भगवान्‌से मिलकर उनसे ही जो माँगना है, माँगूँगा।'

देवर्षिने कहा—'अरे! तुम तो निरे बालक हो, वनमें सिंह, बाघ, भालू आदि हिंसक वन्य-जीव रहते हैं, लौट चलो! मैं तुम्हारे पितासे कहकर तुम्हें आधा राज्य दिला दूँगा। साथ ही पिताका प्यार भी मिलेगा।'

पर ध्रुव तो अपने निश्चयपर अटल था। उसे तो जो कुछ भी लेना था, प्रभुसे ही लेना था। अत: बोला—'बाबा! अब मैं लौटनेवाला नहीं।' बालकका दृढ़ संकल्प देखकर नारदजीने उसे '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर मन्त्रका उपदेश किया, साथ ही आशीर्वाद भी प्रदान किया।

सर्वविदित है कि ध्रुवके दृढ़ संकल्पसे प्रसन्न तथा आकृष्ट होकर छ: मासमें ही भगवान्‌ने विष्णुरूपसे दर्शन देकर ध्रुवको कृतार्थ किया और साथ-ही-साथ उसे राज्य एवं अमरत्व भी प्रदान कर दिया।

संसारमें तीन प्रकारके मनुष्य हो सकते हैं—(१) द्वेष रखनेवाले, (२) स्नेह करनेवाले और (३) उदासीन रहनेवाले। ये तीनों ही प्रकारके मनुष्य दृढ़निश्चयी साधककी सहायता करते हैं। ध्रुव वास्तवमें ध्रुव था।

अत: द्वेष रखनेवाली विमाताने उसे भजनके लिये प्रेरित किया, स्नेहमयी जननीने भी भगवद्भजनका ही समर्थन किया और उदासीन संत देवर्षि श्रीनारदने भी द्वादशाक्षर मन्त्र एवं आशीर्वाद प्रदानकर उसी मार्गपर बढ़नेमें सहायता की।

परमार्थ-पथपर चलनेमें दृढ़ निश्चय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ही नहीं, नितान्त आवश्यक भी है। संसार-पथपर चलनेमें प्राप्तव्य भी मिथ्या और उद्देश्य भी वस्तुत: मिथ्या ही है, परंतु परमार्थपथपर चलनेवालोंका उद्देश्य सत् एवं प्रापणीय वस्तु भी सत् है।

इस प्रकारके दृढ़ निश्चयकी प्राप्तिमें बाधक हैं 'द्वन्द्व'। समझनेकी दृष्टिसे पाँच द्वन्द्व प्रमुख हैं—(१) स्तुति-निन्दा, (२) मान-अपमान, (३) आढ्यता-दरिद्रता, (४) आरोग्यावस्था-रुग्णावस्था और (५) जीवन-मृत्यु।

यदि इन पाँच प्रकारके द्वन्द्वोंमें समता हो जाय तो अन्य द्वन्द्वोंसे सुगमतापूर्वक छुटकारा हो सकता है। अत: साधकको पहलेसे ही यह दृढ़ विचार कर लेना चाहिये कि चाहे स्तुति हो या निन्दा, मान हो या अपमान, धन आये या चला जाय, स्वस्थ रहें या रुग्ण, जीवन रहे या मृत्यु आ जाय—हमें तो परमार्थ-पथपर चलकर भगवत्प्राप्ति ही करनी है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

(भर्तृहरि-नीतिशतक ९४)

दु:ख, निन्दा, बीमारी, दरिद्रता एवं अपमान—ये सभी एक साथ मिलकर आयें तो भी हमें विचलित नहीं कर सकते; क्योंकि हमने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि चाहे कुछ भी हो जाय, हमें तो भगवत्प्राप्ति ही करनी है।

यदि कोई कहे कि इस मार्गमें चलोगे तो तुम्हें अभी मरना होगा तो हमें स्वीकार है; क्योंकि अगणित जन्मोंमें हम जनमते-मरते ही तो आये हैं, फिर इसमें नयी बात क्या होगी? परंतु परमात्मतत्त्व-प्राप्तिके लिये मरना होगा, इससे बढ़कर जीवनकी और क्या सफलता होगी?

जो सिर साँटे हरि मिले तो पुनि लीजै दौर।
क्या जाने कुछ देरमें गाहक आवे और॥

परमात्माकी प्राप्तिके बिना ही यदि जीवन व्यर्थ बीत गया तो वह मृत्यु अत्यन्त भयानक एवं अनन्त मृत्युओंकी जन्मदात्री होगी। उसे ही वास्तविक हानि कहा गया है—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः।

(बृहदा० ३।८।१०)

इस पथपर चलनेमें यदि दु:ख, अपमान, दरिद्रता आदि प्राप्त हों तो समझना चाहिये कि रास्ता सही है, जैसे किसी स्थानको जाना है तो पथिकको यह बात पहलेसे बता दी जाती है कि मार्गमें अमुक-अमुक वृक्ष, पर्वत, पत्थर आदि आयेंगे। जब पथिकके सामने वे ही वृक्ष, पर्वत आदि आते रहते हैं तो वह उत्साहसे उसी पथपर बढ़ता चला जाता है; क्योंकि वे ही चिह्न उसे मिल रहे हैं, जो बताये गये थे। इसी प्रकार जब साधकके मार्गमें सुख-दु:ख, मान-अपमान आदि आयें तब उसे समझना चाहिये कि मार्ग सही है और दुगुने उत्साहके साथ उस पथपर बढ़ना चाहिये। निश्चयकी दृढ़ता ही सफलताकी कुंजी है।

सत्संगकी महिमा

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते सा कामधुक्कामितमेव दोग्धि।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूते॥

कल्पवृक्ष केवल कल्पित वस्तुएँ ही देता है, कामधेनु केवल इच्छित भोग ही प्रदान करती है तथा चिन्तामणि भी चिन्तित पदार्थ ही देती है; किंतु सत्पुरुषोंका संग सभी कुछ देता है। **[सूक्तिसुधाकर]**

भक्ति-साधनाका लोकमंगल पक्ष

(स्वामी श्रीरामराज्यम्जी)

भक्ति-साधनाका एक महत्त्वपूर्ण अंग है—भगवत्स्मरण। भगवत्स्मरणका एक साधन है—भगवान्‌की पूजा। भगवान्‌की पूजा धूप, दीप, नैवेद्य आदिके द्वारा रूप-सेवा करके तथा भगवन्नाम-जपद्वारा नाम-सेवा करके की जाती है। इस पूजाको स्थूल पूजा कहा जा सकता है। सामान्यत: भक्त-साधक यह मान लेते हैं कि इस पूजाके अतिरिक्त और कोई पूजा नहीं है।

वस्तुत: इस पूजाके साथ-साथ भगवान्‌के विराट् शरीर अर्थात् संसारकी भी पूजा की जानी चाहिये। संसारकी पूजा भी भगवान्‌की पूजा है। इसे सक्रिय पूजा (Dynamic worship)-का नाम दिया जा सकता है। संसारकी पूजा किस प्रकार करें? लोकमंगल करके ही यह पूजा की जाती है।

लोकमंगल

लोकमंगलका अर्थ है—संसारके अधिक-से-अधिक प्राणियोंकी प्रेमपूर्ण तथा नि:स्वार्थ सेवा करके उन्हें अधिक-से-अधिक सुख पहुँचाना।

लोकमंगल करनेके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे हमें मानसिक स्तरपर उनका ही सहारा लिये हुए संसारकी सेवा करनेकी सामर्थ्य प्रदान करें।

लोकमंगलके सन्दर्भमें चैतन्य महाप्रभुका यह कथन कितना सटीक है—'**नामे रुचि, जीवे दया**'—इन शब्दोंमें लोकमंगलका ही भाव निहित है।

श्रीमद्भगवद्गीता (५।२५; १२।४)-में वर्णित '**सर्वभूतहिते रता:**' का लक्षण लोकमंगलकी ओर ही संकेत करता है।

लोकमंगलपर प्रकाश डालनेवाला श्रीमद्भागवत (३।२९।२१—२७)-में वर्णित यह उपदेश ध्यान देनेयोग्य है—

भगवान् कपिल अपनी माता देवहूतिसे कहते हैं—'मैं सब भूतोंमें आत्माके रूपमें स्थित हूँ। जो सर्वभूतस्थित मेरी उपेक्षा करके केवल मूर्तिमें मेरी पूजा करते हैं, वे मानो भस्ममें हवन करते हैं। उनकी वह पूजा स्वाँगमात्र है। जो दूसरोंके साथ वैर बाँधते हैं और उनके शरीरोंमें विद्यमान मुझसे द्वेष करते हैं, उनके मनको कभी शान्ति नहीं मिल सकती। कोई दूसरोंका अपमान करे और अनेक विधि-विधानोंसे मेरी मूर्तिकी पूजा करे, उससे मैं कभी प्रसन्न नहीं हो सकता। सब प्राणियोंको यथायोग्य दान-मान देकर और उनसे मित्रताका व्यवहार करते हुए ही उनके भीतर घर बनाकर रहनेवाले मुझ परमात्माका पूजन करना चाहिये।'

उपरोक्त उपदेशका सार है—संसारके प्राणियोंकी उपेक्षा करके की जानेवाली स्थूल पूजा (मूर्ति-पूजा)-से भगवान् प्रसन्न नहीं होते।

नींवके पत्थर

लोकमंगलका भवन नींवके जिन पत्थरोंपर अवस्थित रहता है, उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

१. 'मैं नहीं, दूसरे'

'मैं नहीं, दूसरे' का अर्थ है—'स्व' की सुख-सुविधाओं, अनुकूलताओं और उपलब्धियोंकी यहाँतक कि उसकी प्राण-रक्षाकी भी उपेक्षा करके 'पर' को भगवान्‌का रूप मानते हुए उनके हितको महत्त्व देना।

भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार कहा करते थे—''स्व' की मंगलकामनाकी राखपर नाच-नाचकर अपने प्रियतमको रिझाना चाहिये।' 'मुझे मोक्ष मिल जाय', 'मुझे भगवान् मिल जायँ'—यह कामना कुछ साधकोंमें होती है, परंतु अभावग्रस्त और दुखी लोगोंकी उपेक्षा करके ऐसी कामना रखना स्वार्थपरता है। भगवान् ऐसी स्वार्थपरतासे प्रसन्न नहीं होते। 'मुझे भगवान् मिलें या न मिलें, परंतु दूसरोंके दु:ख दूर हो जायँ'—ऐसा सोचनेसे न केवल भगवान् प्रसन्न होते हैं, बल्कि भगवान्‌के मिलनेका मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। (यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि 'स्व' का मंगल इसकी कामना करनेसे नहीं होता, वरन् भगवान्‌के साथ गहनतम तथा कामनारहित आत्मीय सम्बन्ध जोड़ने और भगवान्‌की

सृष्टिकी सेवा करनेसे होता है।)

दक्षिण भारतके सन्त श्रीरामानुजाचार्यको उनके गुरुने कहा था—'**ॐ नमो नारायणाय**'—इस मन्त्रको गुप्त रखना।' परंतु श्रीरामानुजाचार्यने एक मन्दिरकी छतपर खड़े होकर सस्वर उच्चारण करके वहाँ उपस्थित सब लोगोंको यह मन्त्र सुना दिया। तब उनके गुरुने उनसे कहा—'मेरी अवज्ञा करके तुमने अपराध किया है। अब तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा।' श्रीरामानुजाचार्यने उत्तर दिया—'अब इस मन्त्रका जप करके अनेक लोग नरककी यन्त्रणासे बच जायँगे। मुझे अपने नरकगामी होनेकी चिन्ता नहीं है।' श्रीरामानुजाचार्यको दूसरोंके मंगलकी चिन्ता थी, अपने नरकगामी होनेकी नहीं।

एक बार भगवान् बुद्धका एक शिष्य एक अन्य शिष्य की, जो अतिसार रोगके कारण कष्ट उठा रहा था, उपेक्षा करके ध्यानाभ्यास करनेके लिये बैठ गया। भगवान् बुद्धने रोगी शिष्यकी परिचर्या की। जब उनका शिष्य ध्यानाभ्यास समाप्त करके उठा, तब भगवान् बुद्धने उससे कहा—'जब कोई व्यक्ति रोगकी पीड़ासे दु:ख पा रहा हो, तब क्या तुम्हें ध्यानाभ्यासके लिये बैठना चाहिये था? तुमने मेरे उपदेशोंको समझा ही नहीं।' ये उन भगवत्पुरुषके वचन हैं, जो साधनामें ध्यानाभ्यासको सर्वाधिक महत्त्व देते थे।

२. आपका नहीं, भगवान्‌का परिवार

रक्त-सम्बन्धोंकी चहारदीवारीसे घिरे हुए अपने परिवाररूपी घरसे बाहर निकलें। अपने मानसिक दृष्टि-पथपर अपने रक्त-सम्बन्धियोंके साथ-साथ उन अनेकानेक लोगों—परिचित-अपरिचित, मित्र-अमित्रको आने दें, जिन्हें आपकी सेवा-सहायताकी आवश्यकता है। वे भी आपके ही हैं, पराये नहीं हैं। वे सब भगवान्‌के उसी परिवारमें रहते हैं, जिसमें आप रहते हैं।

३. सहानुभूति नहीं, समानुभूति

सहानुभूति (Sympathy) दिखाकर ही सन्तुष्ट न हो जायँ। सहानुभूतिमें दिखावा (आडम्बर), अहंकार और दूसरोंकी दृष्टिमें अच्छा दिखायी पड़नेकी कामनाकी बुराइयाँ प्रवेश कर सकती हैं। समानुभूति (Empathy)-का मार्ग अपनायें। दूसरोंकी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंमें अपनेको मानसिक रूपसे डालकर उनके सुख-दु:खमें उन्हींके समान सुखी-दुखी होनेको समानुभूति कहते हैं।

४. वैयक्तिकता नहीं, व्यक्तित्व

आपकी वैयक्तिकता (Individuality) का भोजन है शरीर-जन्य अहंकार (Organically conditioned ego)। इसका मूलस्वर है—मैं, मैं और मैं। इसकी सामाजिक अभिव्यक्ति है—शोषण, संघर्ष और दूसरोंकी प्रतिष्ठा-गौरवका निरादर। वैयक्तिकताके अन्धकारसे निकलकर अपने व्यक्तित्व (Personality)-के प्रकाशमें आयें। आपका व्यक्तित्व आपका सौन्दर्य, सुन्दर वस्त्र या कृत्रिम चुस्ती नहीं है। आपका व्यक्तित्व बुना जाता है दूसरोंका मंगल करनेके लिये होनेवाली आकुलता-व्याकुलता (Social concern)-के ताने-बानेसे।

लोकमंगलके कार्योंकी गुणवत्ता

भक्तिकी साधना करनेवाले साधकमें निम्नांकित गुणोंके होनेसे उसके लोकमंगलके कार्योंकी गुणवत्ता बढ़ जाती है—

सहिष्णु बनना, दूसरोंके मतोंका आदर करना, दूसरोंमें उनका मंगल करनेके उद्देश्यसे नि:स्वार्थ रुचि रखना, सबके साथ आन्तरिक ऐक्यकी भावना रखना तथा अपने द्वारा दूसरोंको दु:ख मिलनेपर दुखी होना।

लोकमंगलके पावन प्रसंग

अब हम लोकमंगलसे जुड़े हुए कुछ प्रसंगोंको प्रस्तुत कर रहे हैं—

श्रीमद्भागवत (अष्टम स्कन्ध)-में वर्णित समुद्र-मन्थनके फलस्वरूप जब हालाहल नामक अत्यन्त उग्र विष निकला, तब वह सब ओर फैलने लगा। इस विषसे बचनेके लिये सुर-असुर भगवान् शंकरकी शरणमें आये। उस समय भगवान् शंकर सतीजीके साथ कैलासपर्वतपर तीनों लोकोंके अभ्युदय तथा मोक्षके लिये तपस्या कर रहे थे।

प्रजापतियोंने उनका दर्शन करके उनकी स्तुति करते हुए उन्हें प्रणाम किया—

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या
भवाय देव्याभिमतं मुनीनाम्।
आसीनमद्रावपवर्गहेतो-
स्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः॥

(श्रीमद्भा० ८।७।२०)

तपस्याका इससे उत्तम और क्या उद्देश्य हो सकता है कि वह तीनों लोकोंके मंगलके लिये की जाय?

भगवान् शंकरको जब इस संकटका पता चला, तब वे व्यथित हो गये और सतीजीसे कहने लगे—'इस विषके कारण सबपर कितना भयानक संकट आ पड़ा है।[1] मैं अभी इस विषका भक्षण किये लेता हूँ, जिससे सबका कल्याण हो।[2]' फिर भगवान् शंकरने उस भयंकर विषका पान कर लिया।
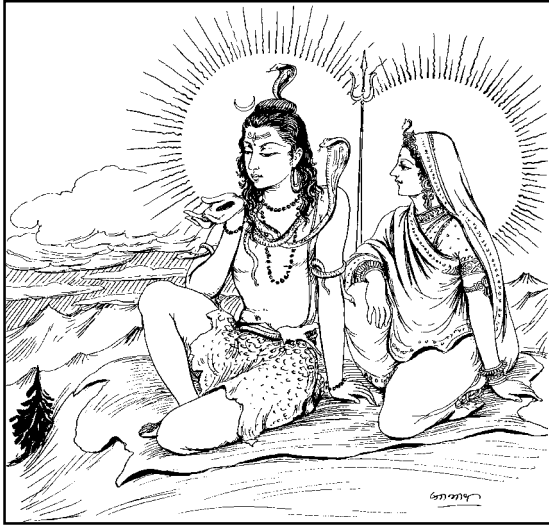
इस प्रसंगमें भगवान् शंकरने देवी सतीसे यह भी कहा—'ये बेचारे किसी प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षा करना चाहते हैं। इस समय मेरा यह कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ। जिनके पास शक्ति और सामर्थ्य है, उनके जीवनकी सफलता इसीमें है कि वे दीन-दुःखियोंकी रक्षा करें। सज्जन पुरुष अपने क्षणभंगुर प्राणोंकी बलि देकर भी दूसरे प्राणियोंके प्राणकी रक्षा करते हैं। जो दीन-दुःखियोंपर कृपा करते हैं, उनसे सर्वात्मा भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं' और जब भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, तब चराचर जगत्‌के साथ मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ।[3]

भगवान् शंकरका यह वक्तव्य लोकमंगलपर दिया गया एक अत्युत्तम वक्तव्य है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित गंगावतरणके प्रसंग (९।९)-से जुड़ा हुआ यह तथ्य कितना असाधारण है कि राजा भगीरथ, उनके पिता राजा दिलीप और पितामह राजा अंशुमान्—तीनोंद्वारा सहस्रों वर्षतक की गयी तपस्यामें 'स्व' की मंगलकामनाके लिये लेशमात्र भी स्थान नहीं था। उन्होंने सगर-पुत्रोंको मोक्ष दिलानेहेतु गंगाको धरतीपर लानेके लिये ही तपस्या की थी।

लोकमंगलका कैसा बेजोड़ उदाहरण है!

लोकमंगलका एक आधुनिक उदाहरण

वृन्दावनके श्रीहरिबाबाने उत्तर प्रदेशके बुलन्दशहर जनपदके ४५ मीलके भीतर बसे ७०० गाँवोंमें गंगानदीकी बाढ़से प्रतिवर्ष होनेवाली तबाहीसे दुःखित होकर हरिनामका कीर्तन करते हुए (सन् १९२२ ई० में) छः महीनेकी अल्प अवधिमें २० मील लम्बा एक बाँध बनवा दिया था। किसानोंके दुःख दूर करनेकी उनकी ललकके कारण ही यह दुष्कर कार्य सम्पन्न हो सका। अपने-अपने सुखोंके पीछे पागल वर्तमान पीढ़ीके लोगोंके लिये श्रीहरिबाबा लोकमंगलके एक प्रकाशस्तम्भके समान हैं।

निष्कर्ष—अपनी दृष्टि भगवान्‌की ओर तथा पैर उस धरतीपर रखें, जहाँ रहते हैं भूखे, वस्त्रहीन, रोगी और अन्य जरूरतमन्द लोग। सदा यह भाव बनाकर रखें कि हम किसीके भी दुःखोंका कारण न बनें और अहर्निश भगवान्‌की सृष्टिकी निःस्वार्थ सेवा करते रहें।

यह है लोकमंगलकी अवधारणाका सार।

---

१. अहो बत भवान्येतत् प्रजानां पश्य वैशसम्। क्षीरोदमथनोद्भूतात् कालकूटादुपस्थितम्॥ (श्रीमद्भा० ८।७।३७)

२. तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे॥ (श्रीमद्भा० ८।७।४०)

३. आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे। एतावान्हि प्रभोरर्थो यद् दीनपरिपालनम्॥
प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः। बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया॥
पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः। प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः॥ (श्रीमद्भा० ८।७।३८—४०)

'फागुन लाग्यो सखी जब तें…'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

भारतका पवित्र पर्व होली और पवित्रतम प्रदेश ब्रज एक-दूसरेके पर्याय बन गये हैं। ब्रजभूमिके कण-कणमें श्रीकृष्ण और उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानीकी लीलाओंका माधुर्य बिखरा पड़ा है। इस अवसरपर ब्रजके कुंज-निकुंज, कालिन्दीके तट, पनघट, वन और उपवन, ताल-तलैया और सरोवर होलीके रंगमें सराबोर हो जाते हैं।

बसन्त-ऋतुका आगमन हुआ। इसीके साथ ब्रजबालाओंकी पायलकी झंकार और उनके कण्ठोंसे निकले गीतोंकी मधुर ध्वनिसे सम्पूर्ण ब्रज गुंजायमान हो उठा। अनेक प्रकारके रंग-बिरंगे पुष्पोंसे शोभित वृक्ष वायुके झकोरोंसे पूरे प्रदेशको अपनी सुगन्धसे सुवासित करने लगे हैं। विविध प्रकारके उपवनोंसे घिरे निकुंज-वन श्रीराधा-माधवकी माधुरी लीलाओंके लिये सर्वथा उपयुक्त रहते हैं।

इन्हींमेंसे एक निकुंजमें श्रीराधारानी अपनी सखियोंसहित श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही हैं। कुछ ही समयके पश्चात् गोचारण करते हुए कान्हा वहाँ आ ही गये। श्रीराधा और उनकी सखियोंने कान्हाको घेरकर रंग और गुलाल भेंटकर अपने संग होली खेलनेका निमन्त्रण दे दिया। अगले दिन होली खेलनेका आश्वासन दे श्रीकृष्ण अपने गोवंशके साथ समीपवर्ती एक गहन वनमें प्रवेश कर गये।

अगले दिन सूर्योदयकी प्रथम किरणके आगमनके साथ ही एक सखी वृषभानु-भवनमें आकर सोयी हुई श्रीराधाको जगाते हुए कहने लगी—हे सखी,

तेरैं आवेंगे आजु सखी हरि, खेलन को फागु री।
सगुन संदेशो हौं सुन्यौं, तेरे आँगन बोले काग री॥
मदन मोहन तेरैं बस माई, सुनि राधे बड़भाग री।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, का सोवै उठि जाग री॥
चोबा चंदन लै कुमकुम अरु केसरि पैया लाग री।
सूरदास प्रभु तुम्हारे दरस कौ, राधा अचल सुहाग री॥

तुम्हारे निमन्त्रणपर श्रीकृष्ण होली खेलने आ रहे हैं, निश्चय ही तुम बड़ी ही भाग्यशाली हो, जो श्रीश्यामसुन्दर सर्व प्रकारसे तुम्हारे वशमें हैं। देखो, सखी! बाहर मृदंग, झाँझ और ढोल तालसे ताल मिला होली खेलनेका आवाहन कर रहे हैं। ऐसे समयपर तुम्हारे सोये रहनेका कोई औचित्य नहीं है। हे राधे! उठो, निकुंजमें श्रीकृष्ण तुम्हारे दर्शनके लिये लालायित हैं। सखीकी वाणी सुनकर श्रीराधारानीकी पलकें ऊपरकी ओर उठीं,

आँखें खुली जागकर देखा, खिड़की से सूरज का तेज।
हड़बड़ाकर उठी राधिका, छोड़ी बिछी बिछाई सेज॥
चली दौड़ती नित्य डगर पर, जा पहुँची कालिन्दी कूल।
प्रीतम को अर्पण करने उपवन से लिये सुगन्धित फूल॥

उन पुष्पोंको अपने आँचलमें भरकर श्रीराधारानी यमुनातटके निकटवर्ती कुंजमें जा पहुँचीं। उन्होंने देखा, एक ओर उनकी सखियाँ बैठी हैं, दूसरी ओर श्रीकृष्ण अपने सखाओं संग विराजमान हैं। श्रीराधाने अपने आँचलमें भरे पुष्प अपना प्रेम प्रदर्शित करते हुए उनके शीशपर उड़ेल दिये, श्रीराधाके द्वारा पुष्पोंकी होली खेलते देख, उन्हें अपने अंकमें भर लिया। बस, फिर क्या था, दोनों ओरसे होली खेलनेका कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। श्रीसूरदासजीने इस लीलाका सजीव वर्णन करते हुए लिखा है—

हरि संग खेलत हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी, उर अंतर कै अनुराग॥
सारी पहिरि सुरंग, कसि कंचुकि, काजर दै दै नैन।
बनि बनि निकसि भई ठाढ़ी सुनि माधौ के बैन॥
डफ, बाँसुरी रुंज अरु महुअरि, बाजत ताल मृदंग।
अति आनन्द मनोहर बानी, गावत उठति तरंग॥

ग्वाल-बाल और सखा श्रीकृष्णके साथ होली खेल रहे हैं। इसी बहाने ब्रजबालाएँ उनके प्रति अपना प्रेम प्रकट कर रही हैं। सारी गोपियोंने रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहन रखी है। कान्हाको रिझानेके लिये अपने नयनोंको काजलसे शृंगारितकर मनमोहक बना रखा है।

इनमेंसे किसीके हाथमें रंगभरी पिचकारी है और किसीके हाथोंमें गुलाल भरा है।

हास-परिहासके इस पर्वपर एक ओर ग्वाल-बालोंकी टोली है, तो दूसरी ओर ब्रजांगनाओंका समूह। अवसर देख कुछ सखियोंने बाल ग्वालोंके मध्य खड़े श्रीकृष्णको घेरकर उनके शीशपर केसरसे भरा कलश उड़ेल दिया। कुछ सखियाँ उनपर कुंकुम छिड़कने लगीं। कुछ उनके मुखको अबीर-गुलालसे रँगने लगीं।

धीरे-धीरे होलीका उन्माद चरम सीमापर पहुँच गया। सूरदासजीने इस लीलाका सजीव वर्णन करते हुए लिखा है—

नंद नंदन वृषभानु किशोरी, मोहन राधा खेलत होरी।
श्रीवृन्दावन अतिहिं उजागर, बरद बरन नव दम्पत्ति भोरी॥
एकनि कर है अगरु कुमकुमा, एकनि कर कैसरि लै घोरी।
एक अर्थ सौं भाव दिखावति, नाचति तरुनि बाल वृद्ध भोरी॥
स्यामा उतहिं सकल ब्रज-बनिता, इतहिं स्याम रस रूप लहो री।
कंचन की पिचकारी छूटति, छिरकत ज्यौं सचु पावै गोरी॥
अतिहिं ग्वाल दधि गोरस खाते, गारी देत कहौ न करी री।
करत दुहाई नंदराई की लै जू गयौ मन बल छल जोरी॥

भगवान् श्रीकृष्ण और किशोरीजी श्रीराधारानी होली खेल रहे हैं। श्रीकृष्णके हाथोंमें केसर रंगसे भरी पिचकारी और किशोरीजीके हाथोंमें कुंकुम है। सबके मुखपर प्रेम और उल्लासका भाव छाया है। कान्हाकी स्वर्ण पिचकारीसे जब सुवासित रंगकी फुहारें निकलती हैं तो राधारानी प्रेमके रंगमें आकण्ठ डूब जाती हैं और जब श्रीराधारानी उनपर कुंकुम और गुलालकी वर्षा करती हैं तो इस समय उनकी छवि देखते ही बनती है।

इस लीलाको निहारकर आकाशमें स्थित अपने विमानोंसे देववधुएँ प्रिया-प्रियतमके ऊपर रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा करके इस दिव्य होलिकोत्सवका आनन्द उठा रही हैं।

सन्ध्याका समय हो गया। बरसानेकी गोपियाँ वृषभानु-भवनमें एकत्रित होकर दिनके समय कान्हाके द्वारा होली खेलनेकी चर्चा करने लगीं। ललिता सखी कहने लगी, जब कन्हैयाने हमारे ऊपर अपनी पिचकारीसे सतरंगी फुहारें छोड़ते हुए किसीके झुमके तोड़े, किसीके कुण्डल, तो किसीका हार तोड़ा और किसीकी आँखोंका काजल पोंछकर उसीके गालोंपर लगा दिया। इस प्रकार कान्हाकी लीलाका स्मरणकर सारी सखियोंने होलीका आनन्द उठाया। विसाखा सखी कहने लगी—

फागुन लाग्यो सखी जब तें तब तें ब्रजमण्डल धूम मच्यौ है।
नारि नवेली बचै नहिं एक बिसेख यहै सबै प्रेम अच्यौ है॥
साँझ सकारे वही रसखानि सुरंग गुलाल लै खेल रच्यौ है।
को सजनी निलजी न भई अब कौन भटू जिहिं मान बच्यौ है॥

सत्य तो यह है कि श्रीकृष्णके प्रेमके कारण ही उनके सतानेमें भी सुखकी अनुभूति होती है।

'होरी खेलत हैं गिरधारी'

होरी खेलत हैं गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो सँग जुबती ब्रजनारी॥
चंदन केसर छिड़कत मोहन अपने हाथ बिहारी।
भरि भरि मूठ गुलाल लाल चहुँ देत सबनपै डारी॥
छैल छबीले नवल कान्ह सँग स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तहँ दै दै कल करतारी॥
फाग जु खेलत रसिक साँवरो बाढ़्यो रस ब्रज भारी।
मीराकूँ प्रभु गिरधर मिलिया मोहनलाल बिहारी॥

—भक्तिमती मीराबाई

जौहरगाथा—

आत्मसम्मानके आगे कुछ भी नहीं

[महारानी पद्मिनीकी शौर्यकथा]

(श्रीसौजन्यजी गोयल)

[महारानी पद्मिनी भारतीय नारीके पातिव्रत्य, सतीत्व, साहस और तेजस्विताकी प्रतीक हैं। अनुपम सौन्दर्यके साथ ही उनमें बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिताका मणिकांचन-संयोग था। अपने धर्म और आत्मसम्मानके लिये मर-मिटनेवाली चित्तौड़की बलिदानी-परम्पराकी वे प्रतिनिधि हैं। प्रस्तुत है उन्हीं वीरांगना महारानी पद्मिनीकी शौर्यगाथा—सम्पादक]

रावल समरसिंहके बाद उनका पुत्र रत्नसिंह चित्तौड़की राजगद्दीपर बैठा। रत्नसिंहकी रानी पद्मिनी अपूर्व सुन्दरी थीं। उनकी सुन्दरताकी ख्याति दूर-दूरतक फैली थी, जिसे सुनकर दिल्लीका तत्कालीन बादशाह अलाउद्दीन खिलजी लालायित हो उठा और उसने चित्तौड़-दुर्गपर एक विशाल सेनाके साथ चढ़ाई कर दी। उसने चित्तौड़के किलेको कई महीनों घेरे रखा, पर दुर्गके रक्षार्थ तैनात राजपूत सैनिकोंके अदम्य साहस तथा वीरताके चलते कई महीनोंकी घेराबन्दी तथा युद्धके बावजूद भी वह चित्तौड़के किलेमें घुस नहीं पाया। तब उसने कूटनीतिसे काम लेनेकी योजना बनायी और अपने दूतके द्वारा चित्तौड़नरेश रत्नसिंहके पास सन्देश भेजा कि 'हम तो आपसे मित्रता करना चाहते हैं। रानीकी सुन्दरताके बारेमें हमने बहुत सुना है, सो हमें सिर्फ एक बार रानीका मुँह दिखा दीजिये, हम घेरा उठाकर दिल्ली लौट जायँगे।'

यह अपमानजनक सन्देश सुनकर रत्नसिंह आगबबूला हो उठे, पर रानी पद्मिनीने इस अवसरपर दूरदर्शिताका परिचय देते हुए अपने पति रत्नसिंहको समझाया कि 'मेरे कारण व्यर्थ ही चित्तौड़के सैनिकोंका रक्त बहाना बुद्धिमानी नहीं है।'

रानीको अपनी नहीं पूरे मेवाड़की चिन्ता थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके चलते पूरा मेवाड़ राज्य तबाह हो जाय और प्रजाको भारी दुःख उठाना पड़े; क्योंकि मेवाड़की सेना अलाउद्दीनकी विशाल सेनाके आगे बहुत छोटी थी। सो उसने बीचका रास्ता निकालते हुए कहा कि रानी प्रत्यक्ष तो उसके सामने नहीं आयेंगी, अलाउद्दीन चाहे तो रानीका मुख आइनेमें देख सकता है।

अलाउद्दीन भी समझ रहा था कि राजपूत वीरोंको हराना बहुत कठिन काम है। बिना जीतके घेरा उठानेसे उसके सैनिकोंका मनोबल टूट सकता है और साथ ही उसकी बदनामी भी होगी, अतः उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

चित्तौड़के किलेमें अलाउद्दीनका स्वागत रत्नसिंहने अतिथिकी तरह किया। रानी पद्मिनीका महल सरोवरके बीचोबीच था, अलाउद्दीनको दूरसे आइनेमें रानीके मुखारविन्दका प्रतिबिम्ब दिखाया गया। उनके अनुपम सौन्दर्यको देखकर अलाउद्दीन चकित रह गया और उसने मन-ही-मन रानीको पानेके लिये कुटिल चाल चलनेकी सोच ली। जब रत्नसिंह अलाउद्दीनको वापस जानेके लिये किलेके द्वारतक छोड़ने आये तो उसने अपने सैनिकोंको संकेतकर रत्नसिंहको धोखेसे गिरफ्तार करवा लिया। रत्नसिंहको कैद करनेके बाद अलाउद्दीनने प्रस्ताव रखा कि रानीको उसे सौंपनेके बाद ही वह रत्नसिंहको मुक्त करेगा। रानीने भी कूटनीतिका जवाब कूटनीतिसे देनेका निश्चय किया और उसने अलाउद्दीनको सन्देश भेजा कि 'मैं मेवाड़की महारानी अपनी सात सौ दासियोंके साथ आपके सम्मुख उपस्थित होनेसे पूर्व अपने पतिके दर्शन करना चाहूँगी। यदि आपको मेरी यह शर्त स्वीकार है तो मुझे सूचित करें।' रानीका ऐसा सन्देश पाकर कामुक अलाउद्दीनकी खुशीका ठिकाना न रहा और उस अद्भुत सुन्दरी रानीको पानेके लिये बेताब उसने तुरन्त रानीकी शर्त स्वीकारकर सन्देश भिजवा दिया।

उधर रानीने गोरा तथा बादलके साथ रणनीति तैयारकर सात सौ डोलियाँ तैयार करवायीं और इन डोलियोंमें छः-छः हथियारबन्द राजपूत वीर सैनिक बिठा दिये। डोलियोंको उठानेके लिये भी कहारोंके स्थानपर छाँटे हुए वीर सैनिकोंको कहारोंके वेशमें लगाया गया। इस तरह पूरी तैयारीकर रानी अलाउद्दीनके शिविरमें अपने पतिको छुड़ानेहेतु चलीं। उसकी

डोलीके साथ गोरा तथा बादल-जैसे युद्ध-कलामें निपुण वीर चल रहे थे। अलाउद्दीन एवं उसके सैनिक रानीके काफिलेको दूरसे देख रहे थे। सारी पालकियाँ अलाउद्दीनके शिविरके पास आकर रुकीं और उनमेंसे राजपूत वीर अपनी तलवारें निकालकर यवन-सेनापर अचानक टूट पड़े। इस तरह

अचानक हमलेसे अलाउद्दीनकी सेना हक्की-बक्की रह गयी और गोरा तथा बादलने तत्परतासे रत्नसिंहको अलाउद्दीनकी कैदसे मुक्त कराकर सकुशल चित्तौड़के दुर्गमें पहुँचा दिया।

इस हारसे अलाउद्दीन बहुत लज्जित हुआ और उसने चित्तौड़पर विजय प्राप्त करनेकी ठान ली। फिर तो भयंकर युद्ध छिड़ गया, किला चारों ओरसे अलाउद्दीनके सैनिकोंसे घिरा था, बाहरसे किलेमें कोई खाद्य-सामग्री आ नहीं सकती थी, अत: युद्धके कारण किलेमें खाद्य-सामग्रीका अभाव हो गया। राजपूतों तथा वीरांगनाओंने अलाउद्दीनकी अधीनता स्वीकार करनेसे आत्मबलिदान दे देना ठीक समझा। ऐसी कठिन परिस्थितिमें राजपूत सैनिकोंने केसरिया बाना पहनकर युद्ध करने और वीरांगनाओंने दहकती चितामें प्रवेशकर जौहर करनेका निश्चय किया। जौहरके लिये गोमुखके उत्तरवाले मैदानमें एक विशाल चिताका निर्माण किया गया। रानी पद्मिनीके नेतृत्वमें सोलह हजार राजपूत रमणियोंने गोमुखमें स्नानकर तथा अपने सम्बन्धियोंको अन्तिम प्रणामकर जौहर-चितामें प्रवेश किया। थोड़ी ही देरमें देवदुर्लभ सौन्दर्य अग्निकी लपटोंमें स्वाहा होकर कीर्ति-कुन्दन बन गया। जौहरकी ज्वालाकी लपटोंको देखकर अलाउद्दीन खिलजी भी हतप्रभ हो गया। महाराणा रत्नसिंहके नेतृत्वमें केसरिया बाना धारणकर तीस हजार राजपूत सैनिक किलेके द्वार खोल भूखे सिंहोंकी भाँति खिलजीकी सेनापर टूट पड़े। भयंकर युद्ध हुआ, गोरा और उसके भतीजे बादलने अद्भुत पराक्रम दिखाया। बादलकी आयु उस वक्त सिर्फ बारह वर्षकी ही थी। उसकी वीरताका एक गीतकारने इस तरह वर्णन किया—

बादल बारह बरस रो, लड़ियों लाखां साथ।
सारी दुनिया पेखियो, वो खाडा वै हाथ॥

इस प्रकार छ: माह सात दिनके खूनी संघर्षके बाद विजयकी असीम उत्सुकताके साथ खिलजीने चित्तौड़-दुर्गमें प्रवेश किया, लेकिन उसे एक भी पुरुष-स्त्री या बालक जीवित नहीं मिला, जो यह बता सके कि आखिर विजय किसकी हुई और जो उसकी अधीनता स्वीकार कर सके। उसके स्वागतके लिये बची तो सिर्फ जौहरकी प्रज्वलित ज्वाला और क्षत-विक्षत लाशें तथा उनपर मँडराते गिद्ध-कौवे। रत्नसिंह युद्धके मैदानमें वीरगतिको प्राप्त हुए और रानी पद्मिनी राजपूत नारियोंकी कुल-परम्पराकी मर्यादा और

अपने कुलगौरवके रक्षार्थ जौहरकी ज्वालाओंमें जलकर स्वाहा हो गयीं, जिसकी कीर्तिगाथा आज भी अमर है और सदियोंतक आनेवाली पीढ़ीको अपने आत्मसम्मानके लिये गौरवपूर्ण आत्मबलिदानकी प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

चार पुरुषार्थ

(डॉ० श्रीकृष्णजी द० देशमुख)

[अनुवाद—श्रीमिलिन्दजी काले]

[गताङ्क २ पृ०-सं० ३७ से आगे]

अर्थ

अर्थका मतलब है सम्पत्ति, धन, वैभव। इस बारेमें आध्यात्मिक और प्रपंचमें लिप्त लोगोंकी कुछ विपरीत कल्पनाएँ हैं। अध्यात्म गरीबीमें विकसित होता है, ऐसी आध्यात्मिक लोगोंकी सोच होती है, जबकि जीवनका विकास सम्पत्तिसे ही होता है—ऐसी प्रपंचमें लिप्त अर्थात् सांसारिक लोगोंकी सोच होती है। इन दोनों विचारोंमें बहुत उलझाव है। हमने आरम्भमें ही देखा है कि अभ्युदय हमारी संस्कृतिका आधा हिस्सा है, इसलिये समर्थ स्वामी रामदास कहते हैं—'**प्रपञ्ची पाहिजे सुवर्ण। परमार्थी पञ्चिकर्ण॥**' अर्थात् सांसारिक जीवनमें सम्पत्ति अर्जित करना चाहिये और परमार्थके मार्गमें पंचीकरणका महत्त्व है। प्रत्येक क्षेत्रमें क्या चाहिये इसका स्पष्ट निर्देश है। गीताके अन्तिम श्लोक '**तत्र श्रीर्विजयो भूतिः**' में भी कोई उलझन नहीं है। सम्पूर्ण समाज और राष्ट्रकी वैभवसम्पन्नताकी आकांक्षा है और ऐसा हो सकता है यह नार्वे, स्वीडन, न्यूजीलैण्ड (welfare states) आदि देशोंने सिद्ध कर दिखाया है, लेकिन इन देशोंमें मनोरुग्णता और दिशाहीन जीवनकी व्यर्थता व्यक्तिगत स्तरपर महसूस होती है। स्वामी समर्थ रामदासजीके 'दासबोध' नामक ग्रन्थकी इस ओवीमें जीवन जीनेका सफल सूत्र समझाया गया है—'***आधी प्रपंच करावा नेटका। मग घ्यावे परमार्थ विवेका॥***' अर्थात् पहले सांसारिक जीवन व्यवस्थित रूपसे व्यतीत करें, उसके बाद परमार्थके विवेकको आत्मसात् करें।

इस बातको ध्यानमें रखनेकी आवश्यकता है। श्रीसूक्तमें माता लक्ष्मीजीकी प्रार्थना और आराधनाको ध्यानसे समझना चाहिये। आज सारा संसार पैसेके चारों ओर घूम रहा है। चीन और रशिया-जैसे देश भी अलग-थलग नहीं रह पा रहे हैं। उत्पादनमें बढ़ोत्तरी, प्रति व्यक्ति आयमें बढ़ोत्तरी, सुखोंके नये-नये साधनोंकी भरमार—यही इस पैसेके पीछे भाग रहे संसारका तत्त्वज्ञान है। हमें भी इस दौड़में शामिल होना ही होगा, लेकिन इस दौड़में साँस फूलने न देना और उसके अनर्थकारी प्रवाहोंमें बिना पड़े भी धर्मका पालन करना सम्भव है। हम अपना काम पूरी ईमानदारीसे करके धन प्राप्त करें तो उसके कारण मन कलुषित नहीं होगा, लेकिन पैसेको ही ध्येय मानकर काम करेंगे तो द्वेष, मत्सर, निराशा, गर्व, आसक्ति और लालसासे मन कलुषित हुए बिना नहीं रह पायेगा। इस प्रकारसे प्राप्त 'अर्थ' धर्मको किनारे हटा देता है। हम कई बार किसी व्यक्तिके बारेमें कह देते हैं कि वह पैसेके पीछे पड़ा है। पैसेके अलावा उसे कुछ सूझता ही नहीं है। शायद सम्भव है कि उस व्यक्तिके द्वारा ईमानदारीसे बहुत अधिक काम करनेके कारण पैसा ही उसके पीछे पड़ गया हो। यदि ऐसा हो रहा हो तो फिर उसकी निन्दा करनेका कोई कारण नहीं है, लेकिन ऐसे समय यदि उसे योग्य काम नहीं मिल पाया तो उसका मन बेचैन हो जायगा। सम्पत्ति प्राप्त होना योग्यता, मेहनत और भाग्यपर निर्भर है, लेकिन सम्पत्तिका योग्य रास्तेसे मिलना और उसका योग्य कारणोंके लिये व्यय होना बड़े भाग्यकी बात होती है। मोक्ष नामक चौथा पुरुषार्थ गरीबी या रईसीपर निर्भर नहीं है। इस अर्थवाला सुन्दर वाक्य संत तुकारामने कहा है कि हम इतने दरिद्र हैं कि चोर भी हमारे पास आनेसे डरता है। तुकाराम-जैसे जीवन्मुक्त संतकी यह उक्ति यह बात निश्चित करती है कि मोक्ष गरीबीपर निर्भर नहीं है। राजा जनक सम्राट् थे, उनके पास अतुल सम्पत्ति थी, उन्हें भी धनसम्पत्ति मोक्षसे वंचित नहीं करती। याज्ञवल्क्य ऋषि-जैसे श्रेष्ठ ज्ञानी सोनेसे मढ़ी हुई सींगोंवाली एक हजार गायें

शास्त्रार्थ होनेसे पहले ही अपने आश्रममें ले आते हैं। वे ऐसा नहीं कहते कि सोना मेरे लिये किस कामका? इस तरह तीनों ही महापुरुषोंके उदाहरण हमारे सामने हैं। 'क्या दरिद्रताके कारण मनुष्य पाप नहीं करता?' और 'धनवान् होनेके कारण मनुष्य कौन-सा पाप करना छोड़ देता है?' इन दोनों वाक्योंको ठीकसे देखनेपर ज्ञात होता है कि पापके बीज दोनों ही स्थितियोंमें हैं। इस सारे विचार-मन्थनसे एक बात स्पष्ट है कि अपना चरितार्थ चलाना मेरा धर्म है और इसलिये अर्थार्जन करना भी मेरा धर्म ही है, लेकिन इस धर्मके कार्यसे हमारे मुख्य धर्मको ठेस नहीं पहुँचना चाहिये।

काम

तीसरा पुरुषार्थ 'काम' है। यद्यपि काम शब्दका अर्थ इच्छा है, फिर भी रतिकी इच्छा उसका मुख्य अर्थ है। सामान्य मनुष्यके जीवनका वह स्थायी भाव है। यह संसार चलता रहे, इसलिये यह सभी प्राणियोंका स्वभाव है। उसे झुठलाना न केवल अव्यवहार्य है बल्कि प्रकृतिके भी खिलाफ है। इसीलिये विभूतियोगमें '**प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः**' अर्थात् प्रजोत्पादनका कारण कामदेव मैं ही हूँ—ऐसा भगवान् श्रीकृष्णने कहा है। यदि यह कामजीवन धर्म अर्थात् विवाहके बन्धनमें मर्यादित रहे तो जीवनमें स्वस्थता रहनेके कारण मन निर्मल बना रहता है। आरोग्य अच्छा रहता है। अलग-अलग व्यक्तियोंसे सम्बन्ध स्थापित करनेसे गुप्त रोग और एड्स-जैसे भयानक रोग हो जाते हैं। यह अब एक वैज्ञानिक सत्य है। इस कारण वैवाहिक प्रतिबद्धता कट्टर सुधारवादियोंद्वारा खिल्ली उड़ाये जानेका विषय नहीं रहा। एड्स रोगपर इलाज ढूँढ़नेके बजाय 'prevention is better than cure' के सर्वसम्मत सिद्धान्तका यहाँ व्यापक उपयोग क्यों न किया जाय? यहीं धर्म और विज्ञानके निकट सम्बन्धकी सिद्धता अनुभव होती है। संत एकनाथ महाराजने कहा है कि '**विधिचे पालन। जे त्यागचे समान॥**' अर्थात् नियमोंका पालन त्यागके समकक्ष है। विवाहको यदि गृहस्थाश्रम और संयमकी चौखटमें रखा जाय तो संत एकनाथ महाराजके वचनोंके अनुसार ऐसे कामजीवनको ब्रह्मचर्यका दर्जा प्राप्त होगा। यदि मनको स्वच्छ और शान्त रखनेका उद्देश्य हम हमेशा ध्यानमें रखेंगे तो किसी भी अतिवादी और दुराग्रही विचारके लिये स्थान नहीं रहेगा।

मोक्ष

मोक्ष या परमार्थमें मुख्य विचार आत्मसुखका है। आत्मसुखके लिये किसी दूसरेकी या किसीकी भी आवश्यकता ही नहीं है। सुखकी हमारी परिभाषा और संतोंकी परिभाषामें जमीन-आसमानका फर्क है। इस कारण कुछ नीतिज्ञ व्यक्तियोंको भी लग सकता है कि जबकि वे धनवान् हैं, पढ़े-लिखे हैं, वैभवयुक्त हैं, सफल हैं, कीर्तिशाली हैं, बच्चे भी होनहार हैं, संक्षेपमें कहें तो सब कुछ जैसा होना चाहिये वैसा ही है तो फिर आत्मसुखकी क्या आवश्यकता है? ऐसे ही विचारोंसे ऐसी धारणा बनती है कि परमार्थ गरीब या दरिद्री लोगोंका काम है। समाजने जिसे त्याग दिया हो, उसीको परमार्थकी राह पकड़नी चाहिये—ऐसी धारणा पूर्णतया गलत है। समर्थ स्वामी रामदासजीने अपने दासबोध ग्रन्थमें स्पष्टरूपसे समाजसे पूछा है कि जिसे पेट भरनेके लिये भी रोटी नहीं मिलती, वह बदनसीब क्या खाक परमार्थ करेगा? प्रश्नोपनिषद्में एक कथा है जिसमें छः शिष्य परमार्थ-प्राप्तिकी अपेक्षासे श्रीगुरुके पास जाते हैं। वे सभी जीवनमें सफल और सम्पन्न थे। वे दरिद्री, भिखारी, निकम्मे, बेकार, पराजित, दीन, गँवार, बहिष्कृत, निराश, थके-हारे और दुर्बल नहीं थे। सामान्य विचारधाराके अनुसार उनका परमार्थसे कोई लेना-देना नहीं होना चाहिये, लेकिन वास्तविक सुख केवल मोक्षमें ही है, ऐसा जानकर उन्होंने परमार्थकी राह पकड़ी। स्वामी विवेकानन्दने भारतवासियोंको दरिद्रता, लाचारी, निकम्मेपन, दीनता, बहिष्कार, उत्साहहीनता, नैराश्य, दुर्बलता आदिको सबसे पहले अपने जीवनसे बाहर कर देना सिखाया। प्रश्नोपनिषद्की कथाके महाशिष्य उपनिषद्की भाषामें कहें तो '**ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणाः**' थे

अर्थात् वेदोंके अनुसार आचरण करनेवाले, ब्रह्मके विषयमें प्रश्नजिज्ञासा रखनेवाले और ब्रह्मानुभूतिकी उत्कण्ठा और लगन रखनेवाले थे। यही आत्मसुखका स्वरूप है। व्यावहारिक सुख और पारमार्थिक सुखमें अन्तर है। हमारी सुखकी परिभाषा व्यावहारिक सुस्थितिपर निर्भर है। इतना ही नहीं बल्कि इन बाहरी सुखोंके चक्करमें हमें अपने भीतर दु:ख देनेवाली बातोंका ख्याल भी नहीं रहता। आइये, इन वाक्योंको हम जाँच-परख लें। व्यावहारिक रूपसे जो व्यक्ति अच्छी स्थितिमें हो, उसे ईर्ष्या होती है या नहीं? मनुष्यका स्वभाव बड़ा विचित्र है। जहाँतक सम्भव हो मुझसे बेहतर अन्य कोई नहीं होना चाहिये, मुझसे कम हो तो बहुत अच्छा और यदि बराबरीमें हो तो चला लेंगे, लेकिन किसी भी बातमें कोई भी अपनेसे बेहतर नजर आता है तो ईर्ष्याकी चिंगारी सुलग उठती है। संतोंका स्वभाव इससे बिलकुल विपरीत है। संत तुकाराम महाराज कहते हैं—***'आपणां सारिखे करिती तात्काळ। नाहीं काळ वेळ तयां लागी॥'*** अर्थात् संत सभीको अपने-जैसा बना देते हैं। उन्हें समय नहीं लगता। उन्हें समयका कोई बन्धन नहीं होता। संत सभीको अपनी ही योग्यतातक लानेका प्रयत्न करते हैं। आइये! हम जरा हमारे रोजके व्यवहारमें इस्तेमाल किये जानेवाले वाक्यांशोंको देखें। ईर्ष्यासे जलनेवाला, द्वेषसे सुलगता हुआ, बदलेकी आगमें जलता हुआ, कामसे बेचैन, लोभसे भरा हुआ, मस्तीमें डूबा हुआ, सत्तासे मदोन्मत्त। क्या इस प्रकारका व्यक्ति कभी भी सुखी हो सकता है? ऐसा नमकीन, कसैला, तीखा, खट्टा जीव आत्मज्ञानके बिना मीठा हो ही नहीं सकता। ऐसा मनुष्य कितना भी वैभवसम्पन्न हो फिर भी क्या आनन्द प्राप्त कर सकता है? जिस समय वह मत्सरसे ग्रस्त होता है, उसी क्षण उसका सुख नष्ट हो जाता है। यह बात संतोंको सहन नहीं होती। ऐसे हर क्षण नष्ट होनेवाले सुखको संत सुख कहनेके लिये तैयार नहीं हैं। ईश्वरकी सच्ची पूजाका मर्म बतलाते हुए संत तुकाराम महाराज कहते हैं—

'कोणाही जीवा चा न घडो मत्सर। वर्म सर्वेश्वर पूजना चे॥'

अर्थात् मनुष्यको किसी भी जीवका मत्सर न होना ही ईश्वरकी पूजाका मर्म है।

संतोंने हमें बतलानेवाली कोई भी बात बाकी नहीं रखी, परंतु हम उनकी सुनते ही नहीं हैं। हमारा और उनका बस इसी तरहका सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध कुछ अजीब है। परमार्थ-मार्गमें कई विपरीत कल्पनाएँ जतनकी जाती हैं और जो मर्मकी बात है, उसे भुला दिया जाता है। अगर मर्मकी बातसे चूके तो फिर सिर्फ रूढ़ियाँ हाथ लगती हैं। इनमें हम इतने उलझ जाते हैं कि सच्चा परमार्थ हमारे हाथोंसे कब फिसल गया, इसका हमें पता ही नहीं लगता। हमें ऐसा लगता है कि हमने बहुत कुछ किया, परंतु होता कुछ भी नहीं है। यह वास्तवमें बहुत बड़ा विरोधाभास है। इसका तात्पर्य यही है कि जो सुख बाहरी बातोंके होने या न होनेपर आधारित है, वह सच्चा सुख नहीं है। वह केवल सुखका आभास है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात है डर। जिसे किसी भी तरहका डर लगता हो, वह व्यक्ति सुखी हो ही नहीं सकता। इसे समझना बड़ा आसान है। सब कुछ हमारे अनुकूल होते हुए भी यदि किसी-न-किसी बातका डर लगता हो तो वह डर लगनेवाला क्षण सुखको दूर भगा देता है। संतोंकी ऐसी दुर्दम्य महत्त्वाकांक्षा रहती है कि सभीको अक्षय सुख मिले। सारा संसार आनन्दमय है। संसारके साथ मेरा सम्बन्ध आनन्दमय है। मेरा मन आनन्दमय है। मैं आनन्दरूप हूँ—ऐसा आनन्द जो परिपूरित होकर भी शेष रहे। ऐसी संतोंकी कोशिश रहती है। उन्हें इस आनन्दकी अनवरत अनुभूति होती है। हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। हम सुखी हैं—ऐसी कल्पना कर लेना और वास्तवमें सुखरूप होनेमें बहुत अन्तर है। हमें अगर अपने ही सुखकी दुनियामें खो जाना हो तो वह प्रत्येक व्यक्तिका व्यक्तिगत प्रश्न है। ऐसे लोगोंका विरोध करनेका कोई कारण ही नहीं है, लेकिन निर्भयताके बिना 'सुखकी दुनियाँ' बनती ही नहीं

है। गीतामें दैवी-सम्पदाके बखानमें पहला गुण 'अभय' बतलाया है। इस बातको ध्यानमें रखना होगा कि निर्भय बननेके लिये भयके मूल कारणको ढूँढ़ना आवश्यक है। केवल उपनिषदोंमें ही वह बतलाया है।

'द्वितीयाद्वै भयं भवति।' जहाँ कहीं दूसरा अनुभवमें आता है, वहाँ वही भयका कारण होता है। मोक्षमें जो कि अद्वैत है, दूसरा सिद्ध ही नहीं होता। अत: मोक्षकी अवस्थामें निर्भयता आती है। हम सभीका अनुभव वास्तवमें इसके एकदम उलटा होता है अर्थात् यदि कोई दूसरा न हो तो डर लगता है। साथके लिये कोई-न-कोई चाहिये। कल्पना करें कि घने जंगलमें अमावस्याके दिन रातभर बरसात हो रही हो और लाइट गुल है। एक पहाड़ीपर बारह कमरेवाले मकानमें एक कमरेमें आप अकेले हैं। आसपास घर, बस्ती, फोन, टी०वी०, रेडियो कुछ भी नहीं है। वहाँ देखा जाय तो कोई नहीं होनेके कारण डरकी कोई वजह नहीं बनती, लेकिन खास वहीं अनजाना डर लगने लगता है। वास्तवमें आप एक ही कमरेमें हैं। बाकी ग्यारह कमरे आपको नजर भी नहीं आ रहे हैं। फिर भी बारह कमरेवाले मकानमें मैं 'अकेला हूँ' यह भावना किसी भी तरह हटती नहीं है। अकेले होते हुए भी भूत नामक कल्पना आपके सामने खड़ी हो जाती है। यदि कल्पनासे ही किसीका निर्माण करना हो तो फिर 'भूत' ही क्यों बनाया जाय? ईश्वर या गन्धर्व क्यों नहीं? इसका कोई जवाब नहीं है। 'भूत' की अनिवारणीय कल्पना हो ही जाती है। फिर उस भूतको भगानेके लिये हनुमानचालीसाका पाठ शुरू हो जाता है। मतलब यह कि अनदेखे भूतके पीछे श्रद्धाके स्वरूपोंमेंसे हनुमान्जीको लगा दिया जाता है। कुछ समय बाद दोनों ही गायब हो जाते हैं। फिर आप अकेले ही 'हा' कहकर चैनकी साँस लेते हैं, लेकिन आप पहले भी अकेले ही थे ना! यह सारा समझमें नहीं आनेवाला झमेला है, लेकिन यदि हमने यह नहीं किया तो फिर हम ही क्या हुए? इस दूसरे या तीसरेके होनेकी भावनासे 'यह सारा ब्रह्म है'—इस अनुभवको प्राप्त किये बिना, छुटकारा नहीं है। इसे ही 'जीवन्मुक्ति' कहते हैं। उसीसे निर्भयता आती है। हर एक व्यक्तिको एक दूसरा डर है अपना शरीर छोड़कर जानेका। मुझे मेरा शरीर छोड़ देनेका डर लगता है। यहाँ भी दो बातें हैं—एक शरीर छोड़नेवाला और दूसरा शरीर छोड़नेसे डरनेवाला। शरीर मेरा है, लेकिन इस शरीरका कोई 'मैं' नहीं है। मैं स्वयं चेतन हूँ। शरीर जड़ है। मेरा होना या न होना शरीरपर निर्भर नहीं है। 'मैं' सत् रूपसे हमेशा हूँ। ऐसे अनुभवको मोक्ष कहते हैं। ऐसे अनुभवसे निर्भयता आती है।

मोक्ष चिरंतन सुखकी धरोहर है। यह सुख किसी व्यक्ति या बातपर निर्भर नहीं है। इस सुखमें किसी भी कारण व्यवधान नहीं आता। वह कभी भी कम नहीं होता। उसमें दु:खका लेशमात्र भी अंश नहीं होता। उसे 'आनन्दघन' कहते हैं। अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, विद्वान्-गँवार इत्यादि किसी भी विशेषताका और उस सुखका कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता अर्थात् वह सुख उन विशेषताओंपर निर्भर नहीं है। इस तरह निरपेक्ष सुख, शान्ति और संतोष मोक्षका स्वरूप है।

इस प्रकार ये चार पुरुषार्थ हैं। इन चारों पुरुषार्थोंको मनुष्यको प्राप्त करना है और उन्हें प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्तिको सम्भव है। अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनों साथ-साथ मिलकर चलना चाहिये—ऐसा हमारी संस्कृतिका आग्रह है। उसमें प्रापंचिक या भौतिक वैभवको नकारा नहीं जाता और साथ ही पारमार्थिक वैभव प्राप्त करनेका आग्रह भी है। पाण्डवोंका मूर्तिमन्त उदाहरण हमारे समक्ष है। उनकी मयसभा प्रापंचिक वैभवका, कलाका और कौशलका नमूना है। उनमें बड़ी रसिकता थी, लेकिन उस रसिकताको हमेशा धर्मकी मर्यादा रही है। ऐसी समझ कि परमार्थ अरसिक लोगोंका कार्यक्षेत्र है एकदम गलत बात है।

अत: परमार्थके बारेमें जो भी भ्रान्तियाँ हैं, उन्हें जितना हो सके उतनी शीघ्रतासे दूर कर लेना चाहिये और हमें अपने सुखके दरवाजे खोल लेना चाहिये। चारों पुरुषार्थ ही वे दरवाजे हैं। **[समाप्त]**

ऐतिहासिक कहानी—

शहजादी जेबुन्निसापर सरस्वतीदेवीकी कृपा

(श्रीअशोककुमारजी चटर्जी)

मुगल शहजादियोंको बेशुमार दौलत एवं रुतबा हासिल होनेके बावजूद उनका जीवन दु:खभरा ही होता था; क्योंकि उनकी शादी नहीं होती थी। औरंगजेबकी बेटी जेबुन्निसाको कव्वाली पसन्द थी। पर्देके पीछेसे वह कव्वालीकी मजलिसमें भाग लेती थी। मजलिसमें इने-गिने दरबारी तथा खुद बादशाह शामिल होते थे।

एक बार बादशाहने जेबुन्निसासे एक क्येत सुनानेको कहा, क्येत यानी कविता। जेबुन्निसाने उमर खैयामके एक क्येतको सुनाते हुए कहा—

चहार चीजके दिल ममबरू कहाम चहार।
शराब, सब्जाह, बहते आब व रूये निगार॥

यानी मेरा दिल चार चीजोंके लिये लालायित है, शराब (कबाबके साथ), सब्जाह (हरियाली), बहते आब (सुन्दर निर्झर) एवं रूये निगार (प्रियतमका सुन्दर मुखड़ा)।

शराबके नामसे बादशाहको बहुत क्रोध आया, मगर अपनी लाड़ली बेटीको सजा-ए-मौत देनेसे पहले उसे एक मौका और देना चाहिये—यह सोचकर बादशाहने निहायत संजीदगीसे कहा, 'बेटी! एक बार फिर जोरसे बोलना, मैंने सुना नहीं।'

वह वही क्येत पुन: कहने जा रही थी कि उसे साफ सुनायी पड़ा, 'रुको शहजादी! रुको, तुम्हारे अब्बाहुजूर इस क्येतको सुनकर सख्त नाराज हुए हैं। इसे तुरंत बदल डालो, वर्ना मरोगी।'

जेबुन्निसाको एक सुन्दर बालिका दीख पड़ी, जो हँस रही थी। जेबुन्निसा यह देखकर हैरान हुई कि मजलिसमें और किसीने न उसे देखा, न उसकी आवाज सुनी। उसे कई साल पहले आगा मैदानकी एक बात याद आ गयी। एक दिन पहरेदारिनियोंके साथ घूमते हुए उसे एक ताबूतसे शंख और घण्टोंकी आवाज सुनायी दी। उसके साथकी पहरेदारिनियाँ उसको रोकतीं, इससे पहले वह दौड़कर उस ताबूतके पास पहुँची, देखा तो उसमें एक सरस्वती प्रतिमा दिखायी दी। वह तुरंत ही बोल उठी, 'जरूर, यह किसी खातून (विदुषी महिला)-का अकरा है। अकरा यानी प्रतिमा।

वहाँके लोगोंको डरते देख, उन्हें वह अभय दे कहने लगी, 'डरिये मत, डरिये मत। आपका मैं कोई नुकसान नहीं करूँगी।' फिर डरते-डरते वहाँके शरीफ (माननीय) लोगोंने उन्हें सरस्वती-पूजाके बारेमें बताया। उस समय उन्हें खुल्लम-खुल्ला पूजाकी अनुमति नहीं थी। शहजादीने पुरोहितसे कहा, 'ऐ बिरहमिन! मेरे तरफसे भी एक पूजा चढ़ा देना' और उसे दो अशरफियाँ (स्वर्णमुद्राएँ) दे दीं, फिर यह सोचकर कि पुरोहितको भी कुछ देना चाहिये। उसे और दो अशरफी देकर कहा, 'यह तुम्हारे लिये है', फिर वे लौट गयीं। सामनेवाली बालिका, बिलकुल वैसी ही प्रतिमा-जैसी दिख रही थी। बालिका फिर बोली, 'बोलो शहजादी! बोलो' और जेबुन्निसा बोल उठी—

चहार चीज के दिल ममबरू कहाम चहार।
रोजा, नमाज, तसबीह व तौबा इस्तगफार॥

मेरा हृदय चार चीजोंके लिये लालायित है, रमजानके महीनेमें दिनभर उपवास यानी रोजा रखना, दिनभरमें पाँच बार नमाज पढ़ना (उपासना करना), अवकाशके समयमें तसबीह (माला)-में उनका (अल्लाहका) नाम जपना और विषय-भोगोंमें तौबा (तीव्र घृणा) रखना, जो इस्तगफार (कल्याणकारी) है।

चारों ओरसे आवाज उठी। सुभान् अल्लाह, सुभान् अल्लाह यानी अल्लाह (परमेश्वर)-की रहमत (कृपा)-से अत्यन्त सुन्दर! बादशाह अत्यन्त खुश होकर बोले, 'बेटी! तुम जो माँगोगी, तुम्हें वही दूँगा।' जेबुन्निसा धीरे-धीरे बोली, 'मैं शाही शान और शौकत (विलास-वैभव)-से दूर इबादतभरी जिन्दगी (उपासनामय जीवन) गुजारना चाहती हूँ।' लाचार बादशाहको वही मंजूर करना पड़ा। बालिका, वह विस्मयमयी बालिका जा चुकी थी। जेबुन्निसा मन-ही-मन गुनगुनायी—

ऐ इल्मकी शहजादी, तुम खुदा की नूर हो।
गम में तुमने सिखाया सब्र, तूफान में मेरा साथ दिया॥

अर्थात् हे ज्ञानकी राजकुमारी! तुम परमेश्वरका प्रकाश हो। दु:खकी घड़ीमें तुमने धीरज सिखाया और तूफानमें (विपत्तिमें) मेरी मदद की।

ज्योतिर्लिंग-परिचय—

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह

[गताङ्क २ पृ०-सं० ३१ से आगे]

(२) श्रीमल्लिकार्जुन

दक्षिण भारतमें तमिलनाडुमें पातालगंगा कृष्णा नदीके तटपर पवित्र श्रीशैल पर्वत है, जिसे दक्षिणका

कैलास कहा जाता है। श्रीशैल पर्वतके शिखरके दर्शन-मात्रसे भी सभी कष्ट दूर हो जाते हैं और आवागमनके चक्रसे मुक्ति मिल जाती है। इसी श्रीशैलपर भगवान् मल्लिकार्जुनका ज्योतिर्मय लिंग स्थित है। मन्दिरकी बनावट तथा सुन्दरता बड़ी ही विलक्षण है। शिवरात्रिके अवसरपर यहाँ भारी मेला लगता है। मन्दिरके निकट ही श्रीजगदम्बाजीका भी एक स्थान है। श्रीपार्वतीजी यहाँ 'भ्रमराम्बा' या 'भ्रमराम्बिका' कहलाती हैं। ब्रह्माजीने सृष्टिकार्यकी सिद्धिके लिये इनका पूजन किया था।

शिवपुराणकी कथा है कि श्रीगणेशजीका प्रथम विवाह हो जानेसे कार्तिकेयजी रुष्ट होकर माता-पिताके बहुत रोकनेपर भी क्रौंचपर्वतपर चले गये। देवगणोंने भी कुमार कार्तिकेयको लौटा ले आनेकी आदरपूर्वक बहुत चेष्टा की, किंतु कुमारने सबकी प्रार्थनाओंको अस्वीकार कर दिया। माता पार्वती और भगवान् शिव पुत्र-वियोगके कारण दुःखका अनुभव करने लगे और फिर दोनों स्वयं क्रौंचपर्वतपर गये। माता-पिताके आगमनको जानकर स्नेहहीन हुए कुमार कार्तिकेय और दूर चले गये। अन्तमें पुत्रके दर्शनकी लालसासे जगदीश्वर भगवान् शिव ज्योतिःरूप धारणकर उसी पर्वतपर अधिष्ठित हो गये। उस दिनसे ही वहाँ प्रादुर्भूत शिवलिंग मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंगके नामसे विख्यात हुआ। मल्लिकाका अर्थ है पार्वती और अर्जुन शब्द शिवका वाचक है। इस प्रकार इस ज्योतिर्लिंगमें शिव एवं पार्वती—दोनोंकी ज्योतियाँ प्रतिष्ठित हैं।

एक अन्य कथाके अनुसार इसी पर्वतके पास चन्द्रगुप्त नामक एक राजाकी राजधानी थी। एक बार उसकी कन्या किसी विशेष विपत्तिसे बचनेके लिये अपने पिताके महलसे भागकर इस पर्वतपर गयी। वह वहीं ग्वालोंके साथ कन्द-मूल एवं दूध आदिसे अपना जीवन-निर्वाह करने लगी। उस राजकुमारीके पास एक श्यामा गाय थी, जिसका दूध प्रतिदिन कोई दुह लेता था। एक दिन उसने चोरको दूध दुहते देख लिया। जब वह क्रोधमें उसे मारने दौड़ी तो गौके निकट पहुँचनेपर शिवलिंगके अतिरिक्त उसे कुछ न मिला। पीछे राजकुमारीने उस स्थानपर एक भव्य मन्दिरका निर्माण करवाया और तबसे भगवान् मल्लिकार्जुन वहीं प्रतिष्ठित हो गये। उस लिंगका जो दर्शन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और अपने परम अभीष्टको सदा-सर्वदाके लिये प्राप्त कर लेता है। शिवरात्रिपर यहाँ मेला लगता है। भगवान् शंकरका यह लिंगस्वरूप भक्तोंके लिये परम कल्याणप्रद है। **[क्रमशः]**

संत-चरित—

शिवयोगी संत तिरुमूलर

(श्रीरामलालजी)

संत तिरुमूलर असाधारण शिवयोगी थे। ग्यारहवीं-बारहवीं शतीके कुलोत्तुंग चोल राजाके मन्त्री महामति शिवभक्त सेक्किलारकृत 'पेरियपुराणम्' के तिरसठ नायनार शैव संतोंमें शिवयोगी तिरुमूलरकी गणना है, उसमें उनके पवित्र तप:पूर्ण चरित्रपर प्रकाश डाला गया है। उनके जन्म-स्थान, समय, पूर्वाश्रम आदिके वृत्तान्तका कोई संदर्भ उपलब्ध नहीं होता। 'पेरियपुराणम्' से केवल इतना ही पता चलता है कि वे कैलास-पर्वतपर नन्दिकेश्वर तथा अन्य शैव सिद्धोंके साथ निवास करते थे। एक दिन उनकी इच्छा हुई कि मैं दक्षिण भारतमें पोदियमलैकी पहाड़ीपर निवास करनेवाले महर्षि अगस्त्यसे मिलूँ, इस कामनासे प्रेरित होकर वे पोदियमलैके लिये चल पड़े और अनेक तीर्थों, क्षेत्रोंका दर्शन करते हुए कुम्भकोणम्के निकट तिरुवादुत्तैर स्थानमें पहुँचे। वहीं उन्होंने रहना आरम्भ किया। वे तमिलनाडुमें आदि शैवाचार्यों अथवा गुरुओंमें परिगणित हैं। वे योगसिद्ध थे। दक्षिण भारतके महान् शैव तायमानुवरने अपने मार्गदर्शक मौन गुरु स्वामीको महात्मा तिरुमूलरकी परम्परासे सम्बन्धित बताया है। संत तिरुमूलर शैव सिद्धान्त और शैव दर्शनके प्रवर्तकोंमें महत्त्वपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित हैं। वे रहस्यवादी संत कवि थे, उन्होने अपनी अनुभवपूर्ण 'तिरुमन्त्रम्' रचनासे तमिल साहित्यकी श्रीवृद्धि की। तिरुमूलरने स्वीकार किया है कि वे नवनाथ सिद्धोंमें एक हैं। संत ज्ञानेश्वरकी पूर्व परम्परामें उन्हें निवृत्तिनाथ, गैनीनाथ, गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथका भी पूर्ववर्ती बताया जाता है। उन्होंने कैलास-पर्वतपर साक्षात् नन्दिकेश्वरसे शिव-तत्त्वका रहस्य समझा था और उनकी कृपा प्राप्त की थी। कहा जाता है कि आठों सिद्धियाँ उनके वशमें थीं।

संक्षेपमें संत तिरुमूलरकी जीवन-कथा इस प्रकार है कि कैलाससे वे अगस्त्य ऋषिसे मिलनेके लिये दक्षिण भारतके पोदियमलै पहाड़ीकी ओर गये। इस यात्राके समय नेपालमें भगवान् पशुपतिनाथका दर्शनकर वे केदारनाथ पहुँचे। वहाँसे उन्होंने अविमुक्तक्षेत्र काशीमें आकर भगवान् विश्वनाथका दर्शन किया। तदनन्तर वे कालहस्ति गये। तिरुवालंकादु होते हुए उन्होंने कांची और तिरुवादिगैमें कुछ समयतक निवासकर चिदम्बरम्में उपस्थित होकर भगवान् शिवनटराजके आनन्दताण्डवका रसास्वादन किया। वे चिदम्बरम्में भगवान् शिवके प्रेममें विभोर हो उठे। चिदम्बरम्से प्रस्थानकर उन्होंने भगवती कावेरीमें स्नान किया, वे तिरुवादुत्तैर पहुँच गये और वहाँ उन्होंने पशुपतीश्वर-मन्दिरमें भगवान् शिवके श्रीविग्रहका दर्शनकर जीवन कृतार्थ किया।

एक दिन कावेरी नदीके एक तटीय वनप्रदेशमें उन्होंने गायोंका रँभाना सुना, वे बड़ी वेदनासे चिल्ला रही थीं। संत तिरुमूलर घटना-स्थलपर पहुँच गये। उन्होंने विचित्र दृश्य देखा। गायोंका चरवाहा मूला मृत पड़ा था। अपने बछड़ोंसहित गायें उसे घेरकर खड़ी थीं, उनके नेत्रोंसे अश्रुकी धारा प्रवाहित हो रही थी। वे कभी मृतकका शरीर बड़े प्यारसे सूँघतीं-चाटतीं तो कभी उसकी परिक्रमा करती थीं।

संत तिरुमूलरका हृदय इस शोकपूर्ण दृश्यसे दयार्द्र हो गया। सच्चे संतकी सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वे किसी भी प्राणीको दुखी नहीं देख सकते। महात्मा तिरुमूलर सिद्ध योगी थे। गायोंके दु:खका निवारण करनेके लिये उन्होंने मूलाके शरीरमें प्रवेश करनेका निश्चय किया। वे अपने शरीरको एक सुरक्षित स्थानमें छोड़कर ग्वालेके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। मूला जीवित हो गया। गायें आनन्दसे नाच उठीं। पश्चिमका आकाश सूर्यकी अस्तकालीन लालिमासे भर उठा। गायें बछड़ोंसहित गाँवकी ओर चल पड़ीं, मूला उनके पीछे-पीछे चलने लगा। गायें अपने-अपने गोष्ठमें चली गयीं। गाँववाले

अपूर्व ढंगसे मूलाको बीच रास्तेपर स्थित देखकर चकित हो गये। मूलाकी स्त्री आयी। उसने घर चलनेकी प्रार्थना की। मूलाके शरीरमें प्राणस्थ संत तिरुमूलरने कहा, 'आजसे हमारा-तुम्हारा पति-पत्नीका सम्बन्ध समाप्त हो गया।' पत्नी अभीतक निस्संतान थी, उसकी समझमें कोई बात न आ सकी। तिरुमूलरने ग्वालेके शरीरमें ही गाँवके एक मठमें प्रवेश किया। दूसरे दिन गाँववालोंके साथ पत्नी मठमें गयी।

गाँववालोंने देखा कि कलका ग्वाला मूला आज समाधिस्थ है, उसका चित्त योगके द्वारा निरुद्ध है। गाँववालोंने पत्नीको समझाया कि हमलोग इनकी महत्ता समझनेमें असमर्थ हैं। मूला संसारकी विषय-वासनासे परे है। मूलाकी पत्नी घर लौट आयी। इस तरह मूलाके शरीरमें संत तिरुमूलरकी शिवयोगीके रूपमें प्रसिद्धि चारों ओर फैल गयी। वे अपने शरीरकी खोज करने लगे, पर वह अदृश्य हो गया। संत तिरुमूलर मूलाके शरीरमें रहकर तप करने लगे। वे तिरुवादुत्तैरै आकर एक बरगदके पेड़के नीचे आसनस्थ होकर भगवान् शिवकी उपासना करने लगे। यह पेड़ तिरुवादुत्तैरैके शिव-मन्दिरके संनिकट ही था। उनकी प्रायः समाधि लग जाया करती थी। इसी स्थानपर उन्होंने 'तिरुमन्त्रम्' की रचना की। उन्होंने उपर्युक्त बरगदकी छायामें भावसमाधिमें स्थित होकर नटराज भगवान् शिवके ताण्डवनृत्यमें लीन चरणोंके पायलकी ध्वनि सुनी। उनकी उक्ति है कि 'मैं स्वयं इधर-उधर भगवान् शिवजीकी खोज करते हुए नृत्य करने लगा, स्वर-ध्वनिके साथ ताल देने लगा। मैंने ध्यानमें उनकी दिव्य झाँकीका दर्शन किया।' उन्होंने संसारके विषयभोगमें आसक्त प्राणियोंको अपने ही हृदयमें भगवान् शिवकी आराधना और खोज करनेकी सीख दी।

महात्मा तिरुमूलर शैव सिद्धान्त और दर्शनके महान् तत्त्वज्ञ थे। उन्होंने शरीरकी पवित्रता और सुरक्षापर विशेष बल दिया है। एक स्थलपर उनकी उक्ति है—'मैं इस शरीरको मल और रोगसे पूर्ण मानता था, पर मैंने इसीमें परमात्मतत्त्वका बोध प्राप्त किया। निःसंदेह भगवान् शिव हमारे शरीररूपी पवित्र मन्दिरमें ही निवास करते हैं, इसको पवित्र और सुरक्षित रखना हमारा कर्तव्य है।' उन्होंने कहा कि 'प्रेम ही शिव है, हमें उन्हींकी कृपा-दृष्टिके द्वारा उनके चरणोंका दर्शन करना चाहिये।'

उन्होंने कहा कि अज्ञानी यह समझते हैं कि 'शिव और प्रेममें अन्तर है, दोनों दो हैं; पर वे यह नहीं जानते कि प्रेम शिवमें तदाकार हो जाता है, यह जानते ही वे प्रेममय होकर शिवमें स्वरूपस्थ हो उठते हैं।' उन्होंने प्रेममय शिवका तात्त्विक विवेचन करते हुए दर्शनकी भाषामें कहा कि परमेश्वर शिव भीतर-बाहर सर्वत्र प्रेमस्वरूप हैं। वे प्रेमकी मूर्ति हैं। वे अनादि और अनन्त हैं। वे ही चिन्तनीय और परम ध्येय तथा उपास्य हैं। वे प्रेमके तत्त्व हैं, वे प्रेमसे ही प्राप्त होते हैं, वे कर्ता हैं, प्रेमके प्रतिपाद्य हैं। जो उनसे प्रेम करते हैं, उनकी वे पद-पदपर सँभाल करते हैं।

संत तिरुमूलरने हृदयमें विराजमान परम शिवकी प्रेम-उपासनाका प्रचार किया। उपासना-विधिपर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा—'गुरुके चरणोंमें प्रणिपात कीजिये। वे सद्ज्ञान-स्वरूप हैं। अपने ही भीतर—आत्मामें परम प्रकाशस्वरूप परम शिवका बोध प्राप्त कीजिये, जहाँ न सूर्य है, न चन्द्रमा। जीवात्मा और शिव—दोनों एक हैं, यही हमारी साधनाका सुदृढ़ आश्रय है।'

महात्मा तिरुमूलर बड़े विनम्र थे। योगकी चरम-अवस्थामें संस्थित होनेपर भी उन्होंने सदा यही कहा कि 'मैं अपने उपास्य परमाराध्यका स्वरूप समझनेमें नितान्त असमर्थ हूँ। 'तिरुमन्त्रम्' में उनका अत्यन्त विनयपूर्ण निवेदन है कि 'मैं भगवान् शिवका उस तरह गुणगान नहीं कर सकता, जिस तरह उनके भक्त करते हैं तथा आनन्दविभोर होकर नाचने लगते हैं। न तो मैं ज्ञानियोंके पथपर चलनेमें अपने आपको बहुत सबल पाता हूँ और

न शिवके साधकोंकी ज्ञान और भक्तिके पथपर चलनेमें बराबरी ही कर सकता हूँ।' उन्होंने शिवभक्तोंकी बड़ी महिमा गायी है और कहा है कि 'भक्तोंके संस्तवन और मधुर कीर्तनसे भगवान् शिव स्वयं प्रकट हो जाते हैं। ब्रह्माकी भी शक्ति नहीं है कि वे भक्तोंके महत्त्वको समझ सकें। तत्त्वज्ञानी मुनि और देवता भी शिवभक्तोंकी सदा स्तुति करते रहते हैं।'

संत तिरुमूलरने अपनी उपासनाके सम्बन्धमें कहा कि 'मैं उन शिवसे प्रेम करता हूँ, जिनका व्याघ्रचर्म स्वर्णसे भी अधिक दीप्तिमान् है, जिनके मस्तकका अर्धचन्द्र पूर्ण प्रकाशमय है, जो निरन्तर चिता-भस्मपर नृत्य करते रहते हैं।'

उनका कथन है—'जिनके हृदयमें प्रगाढ़ दिव्यप्रेम है, वे ही भगवान् शिवका साक्षात्कार कर सकते हैं, जिनके हृदयमें प्राणिमात्रके प्रति करुणा है, वे ही उनके दोनों चरणोंका आश्रय पा सकते हैं। जो लोग रात-दिन विषय-प्रपंचमें चिन्तित रहते हैं, वे पापके भागी हैं, वे ही बन्धनमें हैं और वे ही जन्म-मरण और दु:खके चक्रमें भ्रमित होते रहते हैं।'

(तिरुमन्त्रम् १८। २७३)

तमिलनाडु ही नहीं, समस्त देशमें उनकी वाणीके प्रति लोगोंके हृदयमें यथेष्ट आदर है। उसमें उनके महत्त्वपूर्ण तथा गहन अनुभव भरे पड़े हैं। उन्होंने 'तिरुमन्त्रम्' की रचना की, जो तीन हजार पदोंका ग्रन्थ कहा जाता है। इन पदोंमें भक्तिपूर्ण रहस्यवादी भावनाओंका सुचारु समावेश सम्भव हो सका है। ये पद मन्त्र कहे जाते हैं। तिरुमूलर एक उच्चकोटिके संत-कवि थे। वे शैव-सिद्धान्तके आदि प्रवर्तकोंमें परिगणित किये जाते हैं। अपनी 'तिरुमन्त्रम्' रचनामें उन्होंने पशु (जीवात्मा), पति (परमेश्वर शिव) और पाश (बन्धन)-की विस्तृत व्याख्या की है। पदोंमें उन्होंने संसारके वैषयिक रूप और परमेश्वरीय ज्ञानपर प्रकाश डाला है। सांसारिक व्यवहारके जीवनोपयोगी अनेक विषय 'तिरुमन्त्रम्' में वर्णित हैं। इसकी रचनामें रहस्यवादकी मौलिक झाँकी उपलब्ध होती है। एक स्थलपर उन्होंने रहस्यवादकी भाषामें कहा है कि 'ब्राह्मणके घरमें पाँच गायें हैं। पाँचों भिन्न-भिन्न दिशामें चली जाती हैं। यदि कोई सचेत-सावधान ग्वाला उन्हें अपने वशमें रखे तो वे बहुत दूध देंगी।' इस कथनका भाव यह है कि 'मनुष्यकी पाँच इन्द्रियाँ हैं। जो व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, उसे इन पाँचोंको वशमें रखना चाहिये।' इस तरह उन्होंने लोगोंको अनेक महत्त्वपूर्ण और मार्मिक उपदेश दिये हैं। उनकी वेदान्तपरक मार्मिक वाणी है—'जो लोग आत्मज्ञानी हैं, वे ही शिवके चरणोंकी उपासना करते हैं, आत्मज्ञानी ही उनसे प्रेम करते हैं, वे ही दर्शनशास्त्रके वास्ततिक ज्ञाता हैं, भगवान् शिव ऐसे ही आत्मज्ञानियोंके अपने (सम्बन्धी) हो जाते हैं।'

संत तिरुमूलरने तप और दान-धर्मकी बड़ी महिमा बतायी है। उनकी उक्ति है कि 'दु:खसागरसे पार होनेके दो ही अमोघ उपाय हैं—तप और दान। जो दान सांसारिक लाभके लिये किया जाता है, उसका फल है दु:खप्राप्ति। जो निष्काम भावसे परमात्माकी पूजाके रूपमें किया जाता है, उससे प्राणी भगवान्‌की कृपा प्राप्त करता है और आध्यात्मिक पथपर अग्रसर होता है।'

उनका कथन है—'जो दूसरोंके दु:खमें सहानुभूति दिखलाते हैं और दया करते हैं, वे ही भगवान्‌के चरणोंका दर्शन करते हैं, ऐसे सहृदय लोग ही स्वर्गके अधिकारी हैं। कृपण लोग मृत्युके समय असहाय दशामें रोते-कलपते विनष्ट हो जाते हैं।' (तिरुमन्त्रम् १६। २६६)

संत तिरुमूलरने कहा कि 'धन-प्राप्तिके लिये मनुष्यकी प्रशंसामें सीमित बुद्धि और शक्तिका उपयोग न कर भगवान् शिवका भजन करना चाहिये। भगवान्‌के भजनसे ही अभीष्ट सिद्ध होता है।' कहते हैं, संत तिरुमूलर तीन हजार वर्षतक जीवित थे। वे योगसिद्ध तपोमूर्ति महात्मा और शैवाचार्य थे। उनका नाम शिवयोगीके रूपमें अमर है।

कहानी—

मन्दिरका मान

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

'पाटनका सेनापति आया था?' कुमार चन्द्रचूड़को समाचार मिला है कि पाटनका सेनानायक अकेला ही आज इधरसे आया है। समाचार मिलते ही कुमार अपनी साँढ़नीपर सवार हो गये। ऊँट अपनी पूरी शक्तिसे दौड़ता आया है।

पाटन और जूनागढ़की शत्रुता बहुत पुरानी है और अब तो जयसिंह नरेश जूनागढ़पर आक्रमण करनेकी योजना भी बना चुके हैं। पाटनका सेनानायक आया है तो कोई दुरभिसन्धि होगी। अकेला क्यों आया वह? उसके सैनिक कहाँ छिपे हैं पीछे?

कुमार चन्द्रचूड़ने अपने छोटे भाई 'रा' खेंगारको समाचार भेज दिया है। अब सेनानायक आये, सेना आये या स्वयं जयसिंह आयें—जूनागढ़ कुछ कोरीकी झोपड़ी नहीं कि उसे कोई उजाड़ जायगा। अबतक तो 'रा'ने सब ओर चर भेज दिये होंगे। पाटनकी सेना कहाँ छिपी है, यह बात छिपी नहीं रह सकती।

'केशव—यह पाटनका सेनानायक केशव अकेला कैसे आया? कोई सन्देश लेकर आया होता तो उसे सीधे आना था। जूनागढ़को एक ओर छोड़कर यह इस प्रकार क्यों निकल गया? गढ़को घेरने और अपनी सेनाके पड़ाव निश्चित करने आया हो तो? पर अकेला—कुछ भी हो, इसे पकड़कर गढ़के तलघरमें बन्द किया और जयसिंहकी योजनाका एक पैर टूटा। इसे तो आज पकड़कर बन्द कर ही देना ठहरा।' कुमारकी साँढ़नी दौड़ती आयी थी और उनके मनमें ये विचार उमड़ते-घुमड़ते आये थे। उनका उत्साह—आज वे उत्साहकी मूर्ति बन गये थे। पाटनके सेनानायकको पकड़ लेनेका उन्हें पूरा विश्वास था।

'काले घोड़ेपर बैठा पट्टनी सेनानायक केशव यहाँ आया था?' कुमारने एक ग्रामीणसे पूछा। केशव आया तो इधर ही था और वह यहाँ ठहरा भी होगा। यहाँ पानी पिये बिना वह आगे बढ़े, ऐसा नहीं हो सकता। आगेका मरुस्थल—मरुस्थलका मार्ग जब चुना है उसने, तो इस ग्रामसे जल लिये बिना काम कैसे चल सकता है उसका?

'आया तो था कुमार!' ग्रामीणने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। 'वह धीरसिंहके यहाँ रुका था।'

कुमार चन्द्रचूड़की ऊँटनी आगे बढ़ गयी। धीरसिंह अपने द्वारपर जैसे उनका मार्ग देखता ही खड़ा था। उसने नमस्कार किया और कुमारने उसे तनिक व्यंग्यसे फटकारा—'जानते हो कौन रुका था तुम्हारे यहाँ?'

'उसने बताया था कुमार।' धीरसिंहमें न भय जान पड़ता था, न गर्व। वह शान्त खड़ा था।

'उसने बताया था? उसे जानकर भी जाने दिया तुमने? तुम सोरठी हो?' कुमार चन्द्रचूड़के नेत्र चढ़ गये। उनका स्वर कठोर हो गया।

'मैं सोरठी हूँ। राजपूत हूँ। सोरठकी मर्यादा, सोरठका गौरव मेरा गौरव है। सोरठके लिये मेरा सिर चढ़ता हो तो मैं पीछे नहीं हटूँगा।' धीरसिंहकी वाणीमें जो गौरवपूर्ण ओज था, वह किसी राजपूतको ही शोभा दे सकता है। 'कुमारको मेरे सोरठी होनेमें सन्देह है?'

'मैं तुम्हारा अपमान करना नहीं चाहता।' कुमारके स्वरमें नरमी आ गयी। उनके पास यहाँ उलझनेका समय नहीं। एक-एक पल उनके लिये मूल्यवान् है। उनका शत्रु उनसे दूर-दूर होता जा रहा है। उन्हें उसे पकड़ना है। 'वह सोरठके शत्रुका सेनानायक है। कहाँ गया? किधर गया वह? मुझे मार्ग बताओ।'

'कोई हो वह' धीरसिंह उसी गम्भीर स्वरमें कहता गया—'उसने अपनेको छिपाया नहीं। अपना नाम-परिचय बताकर उसने कहा कि वह अतिथि है। एक ब्राह्मण—एक अतिथि आयेगा और सोरठी उसे पानी नहीं देगा? उसे दूध नहीं पिलायेगा? मैंने उसे दूध पिलाया, उसके घोड़ेको पानी दिया। वह चला गया।'

'गया किधर?' कुमार चन्द्रचूड़ने आतुरतासे पूछा।

'कुमार! वह मेरा अतिथि हुआ था।' धीरसिंहने मस्तक झुका लिया। जो उसका अतिथि बना, क्या हुआ कि वह शत्रु था। वह उसका मार्ग बताकर विश्वासघात करे? एक राजपूत अतिथिके साथ विश्वासघात करे?

क्या सोचते हैं आप कि कुमारने उसकी गर्दनपर तलवार दे मारी होगी? उसे लौटनेपर पकड़वा मँगाया होगा? जूनागढ़के स्वर्गीय 'रा' नवधनके कुमार ऐसे ही होते तो प्रजाका बच्चा-बच्चा उनके लिये सदा प्राण देनेको उत्सुक रहता? वह शूर शूर नहीं, जो दूसरे शूरकी भावनाका सम्मान नहीं करता। जो धर्मको महत्त्व नहीं देता, जो धार्मिकके आगे मस्तक नहीं झुका पाता, वह विजयी हो, सम्पत्तिका स्वामी हो और कुछ भी हो, शूर नहीं है। शूर क्रूर पिशाचको नहीं कहा करते। शूरमें शौर्य होता है तो औदार्य भी होता है। जूनागढ़के 'रा' का, उनके कुमारोंका इतिहास गुण गाता है—केवल इसलिये कि वे शूर थे। सच्चे अर्थमें शूर।

'धन्य हो तुम! तुम-जैसे सोरठियोंसे ही सोरठका मस्तक ऊँचा है।' कुमार चन्द्रचूड़ने अपने गलेसे मोतियोंकी माला उतारकर धीरसिंहके गलेमें डाल दी। उनका स्वर गूँजा—'जय सोमनाथ!' उनकी साँढ़नी दौड़ चली।

'जय सोमनाथ!' धीरसिंह दौड़ा अपनी साँढ़नीपर चढ़नेके लिये। अपना आतिथ्य-धर्म उसने पूरा कर दिया। अपने कुमारको अब अकेले वह शत्रुके सामने नहीं जाने दे सकता। उसे कुमारके पीछे जाना है।

× × ×

'कोई आता है?' केशवने एक बार घूमकर पीछे देखा और उसका घोड़ा दुगने वेगसे उड़ चला। 'वह साँढ़नी।' साँढ़नीपर कौन है, यह देखनेका केशवको अवकाश नहीं। वह टीला—वह सामनेका टीला। टीलेपर उसका घोड़ा पहुँच जाय और फिर चाहे कोई आये। 'रा' आये या 'रा' की पूरी सेना आ जाय।

'वह जा रहा है! वह जा रहा है केशव!' कुमार चन्द्रचूड़ने भी देख लिया था दूरसे उसे। उन्होंने स्वयं उसे ढूँढ़ा था। धीरसिंह केवल उनके पीछे आ रहा था।

'इसे जब सोमनाथ जाना था, इतना चक्कर क्यों काटा इसने?' कुमारकी समझमें कुछ आ नहीं रहा था। 'केशव भगवान् सोमनाथके दर्शन करने अकेला आये, यह कुछ मनमें आनेयोग्य बात नहीं। समुद्रके मार्गसे भी वह नौकासे आ सकता था और जूनागढ़में कभी किसीने भगवान् सोमनाथके यात्रीको रोका तो है नहीं। वह सूचना देकर या बताकर आता तो बाधा क्या थी उसे!'

'बड़े काइयाँ होते हैं ये पट्टनी!' कुमार अपने-आप बोल रहे थे। 'पता नहीं कहाँ जाना था इसे। हम लोग पीछे लगे हैं, यह इसने ताड़ लिया और इधर निकल आया।'

'अब जा कहाँ सकता है?' धीरसिंहने ऊँटको दौड़नेके लिये अधिक उकसाया।

'तुम निरे योद्धा हो।' कुमार चन्द्रचूड़ हँसे। 'वह टीला—वह टीला देखते हो न। टीलेपर पहुँचनेसे पहले हम केशवको पकड़ सकें तो ठीक।'

'अब, अब, अब।' लगता था कि केशव अब पकड़ ही जायगा। घोड़ा थक गया था। पसीने-पसीने हो रहा था। कुमार चन्द्रचूड़ इतने निकट आ गये थे कि उन्होंने भाला उठा लिया दाहिने हाथमें और ललकारा—'केशव! पाटनके सिद्धराज जयसिंहके सेनापतिके लिये भागना शोभा देता है क्या?'

'बस यह टीला! चढ़ तो जा बेटा!' केशवने ललकारका उत्तर नहीं दिया। उसने घोड़ेके मस्तकको थपथपा दिया।

'जय सोमनाथ!' कुमार चन्द्रचूड़ देखते रह गये। टीलेपर केशवका घोड़ा पहुँचा और वह कूदकर पृथ्वीमें भगवान् सोमनाथको दण्डवत् नमस्कार करते गिर गया।

'जय सोमनाथ!' कुमारके हाथका भाला गिर पड़ा। उन्होंने वहींसे हाथ जोड़े।

'कुमार!' धीरसिंहने टीलेपर साँढ़नी चढ़ानेके लिये जिधर मार्ग था, उधर मोड़ी और कुमारको उत्साहित

किया।

'पागल हुए हो धीरसिंह!' कुमारने हँसकर रोक दिया उन्हें। 'टीलेपरसे भगवान् सोमनाथके ध्वजके दर्शन हो जाते हैं, यह भूल गया क्या तुम्हें? अब शीघ्रता क्या है? अब तो केशवके साथ हम भी भगवान्‌के दर्शन करेंगे।'

'जय सोमनाथ!' केशव टीलेपर खड़ा हो गया था। उसने बड़ी स्थिरताके साथ धीरसिंहकी ओर देखा।

'जय सोमनाथ!' धीरसिंहने भी हाथ जोड़ लिये। उसे सचमुच यह बात भूल गयी थी कि इस टीलेसे सोमनाथके गगनचुम्बी मन्दिरपर फहराती दिव्य ध्वजाके दर्शन हो जाते हैं, जहाँतक ध्वजाके दर्शन होते हैं, वह सब प्रदेश भगवान् सोमनाथका है। उस क्षेत्रमें पैर रखनेके पश्चात् प्रत्येक प्राणी निर्भय हो जाता है। सेनानायक केशव अब सोमनाथके क्षेत्रमें भगवान् सोमनाथकी शरणमें खड़ा है। किसका साहस है जो उसे छू सके। सोमनाथ—गुर्जरके आराध्यदेव, उनकी सीमामें तनिक भी इधर-उधर करते-न करते तो सम्पूर्ण गुजरात उलट-पलट हो रहेगा। भगवान् सोमनाथकी मर्यादाका अतिक्रमण करके भला कोई गुजरातमें सकुशल रह सकता है?

'आओ कुमार!' केशव स्वस्थ प्रसन्नमुख बोल रहा था। 'अब यहाँतक आ गये हो तो भगवान्‌का दर्शन किये बिना कहाँ लौटा जा सकता है, लेकिन मेरा अश्व बहुत थक गया है।'

'हम भी विश्राम करेंगे केशव।' कुमार ऊपर आ रहे थे। 'इतने दूर तुम्हारे साथ आये हैं तो तुम्हारे साथ ही भगवान्‌के दर्शन करेंगे।'

'आपको सन्देह है कि मैं लौट पड़ूँगा?' केशवने कटाक्ष किया। 'मैं तो भगवान् सोमनाथकी यात्रा ही करने निकला हूँ। सोरठके कुमार ब्राह्मणपर विश्वास न करें तो उपाय क्या?'

'सोरठको तुमने पहले भी कभी अविश्वासी देखा है?' कुमारको बात लग गयी जान पड़ती थी। 'हमें सावधान तो रहना पड़ता है; किंतु यहाँ भगवान् सोमनाथके क्षेत्रमें किसीपर अविश्वास करने और उसके पीछे रहनेका हमें क्या अधिकार है। तुम्हें बुरा लगता है तो हम यह चले, लेकिन तुम यात्रा करने निकले हो, सच कहते हो?'

'राजमाताको भगवान् सोमनाथके दर्शन करने हैं, यह तो आप भी जानते होंगे।' केशवने कहा। 'समुद्रके मार्गमें तो कुछ देखना है नहीं, इस मार्गकी तत्काल क्या स्थिति है, यह मैं स्वयं देख लूँ, इस बातकी सत्यतामें सन्देह क्यों हुआ आपको?'

'मार्ग देखने सेनापति निकलें और अकेले?' कुमारकी शंकाको आप असंगत कैसे कह देंगे?

'मार्ग तो देखना ही था। इसी बहाने सेनापतिकी सोमनाथयात्रा भी हो जायगी। राजमाताके साथ कहीं महाराज भी आये तो केशव ब्राह्मणको तो पाटनमें ही पड़े रहना ठहरा न।' केशवने बात स्पष्ट की। 'भगवान् सोमनाथके दर्शन करने क्या सेनाके साथ आना शोभा देता मुझे? मैं तो भगवान्‌का एक तुच्छ किंकरमात्र ठहरा। सेना आनी होगी तो महाराजके साथ आ रहेगी।'

'अपने यहाँ भगवान् सोमनाथके यात्रीका हम सत्कार कर पाते, तुमने हमें इस योग्य भी नहीं ठहराया केशव?' कुमारके स्वरमें पता नहीं कहाँका स्नेह और करुणा उमड़ पड़ी।

'एक दीन ब्राह्मण भगवान्‌के यहाँ आनेको चला कुमार! उसे सेनापति बनकर नहीं, एक दीन बनकर ही आना चाहिये था न?' केशवका स्वर भी आर्द्र होता जान पड़ता था। 'राजकुलका सम्मान तो राजकुलके ही उपयुक्त है। मैं तो केवल आपकी दृष्टि बचाकर भगवान्‌के चरणोंतक पहुँच जाना चाहता था। आप चुपचाप लौटने दोगे तो ठीक, नहीं तो, पाटन भी तो समुद्र-तटपर ही है।'

'तुम समुद्रके मार्गसे क्यों लौटोगे केशव?' कुमारने बड़ी दृढ़तासे कहा। 'हमें तुम सत्कारका सौभाग्य नहीं देना चाहते तो न सही। जूनागढ़में जहाँसे, जिधरसे, जो

कुछ देखते तुम्हें जाना हो, देख जाना। 'रा' खेंगार तुम्हारा पीछा नहीं करेंगे।'

कुमार साँढ़नीसे उतर पड़े थे। उन्होंने और धीरसिंहने भी भूमिमें लेटकर भगवान् सोमनाथकी ध्वजाका वन्दन किया। आधी घड़ी पहले जो एक-दूसरेके शत्रु थे, वे पास-पास ऐसे बैठे थे, जैसे दो अभिन्न मित्र बैठे हों। भगवान् सोमनाथके मन्दिरके स्वर्णकलशसे ऊपर श्वेत ध्वज फहरा रहा था और उसकी छायामें तो भय, अविश्वास, आशंकाको स्थान ही नहीं है।

× × ×

'जय सोमनाथ!'

'जय सोमनाथ!' कुमार चन्द्रचूड़ने देखा कि केशव अपना घोड़ा सजाये सामने खड़ा है। सोमनाथ पहुँचकर कुमारने यह पता ही नहीं रखा कि केशव कहाँ है। भगवान् सोमनाथकी इस पुरीमें किसीका पीछा करना तो अपराध है। आज सहसा केशव सम्मुख आ खड़ा हुआ। कुमारने पूछा—'प्रसन्न तो हो केशव?'

'भगवान्‌की कृपा है।' केशवने कहा। 'भगवान्‌के दर्शन हो गये। उनकी पूजाका सौभाग्य मिला। अब पाटन लौटना है। कुमार! मेरी यात्रा पूरी हो गयी। अब पाटनका सेनापति सोरठमें गुपचुप कुछ देख जाय, यह शोभाकी बात नहीं है। आप कब लौट रहे हैं?'

'केशव!' कुमार केवल सम्बोधन करके एकटक देखते रह गये।

'आपलोग कहते हैं कि पट्टनी काइयाँ होते हैं।' केशव गम्भीरतासे बोल रहा था। 'लेकिन पट्टनी अपने आराध्यके मन्दिरका सम्मान करना जानते हैं। भगवान् सोमनाथका यात्री आपको धोखा देकर आपके यहाँसे चला जाय, यह कैसे हो सकता है कुमार! मैं सोरठकी सीमा आपके साथ पार करूँगा।'

'सुना है, जयसिंह जूनागढ़को घेरनेकी योजना बना चुके हैं।' कुमारने एक भिन्न ही बात कही।

'यहाँ खड़े होकर झूठ नहीं बोला जा सकता।' केशवने एक बार मस्तक उठाकर मन्दिरके स्वर्णकलशको देखा। 'मैं लौटा और कूच। वहाँ मेरे लौटनेकी ही प्रतीक्षा होगी महाराजको। राजमाता भगवान् सोमनाथके दर्शन करने आयें तो उन्हें सोरठका स्वागत नहीं, अपने पट्टनी सैनिकोंकी ही सेवा मिलनी चाहिये यहाँतक।'

'जयसिंहका गर्व तो बहुत बड़ा है।' कुमार चन्द्रचूड़ हँसे। 'लेकिन यदि उनका सेनापति लौटे ही नहीं? वह जूनागढ़के किसी तलघरकी ही शोभा बढ़ाता रह जाय?'

'यह आप कहते हैं कुमार!' केशव भी खुलकर हँसा। 'आप यहाँ हैं, इसलिये आप ऐसा परिहास कर सकते हैं। सोरठकी सीमामें पहुँचनेपर सोरठके राजकुमार यह परिहास भी नहीं कर सकेंगे, सो क्या मैं जानता नहीं हूँ, लेकिन कुमार एक बात बताये देता हूँ। महाराजकी योजना तो महाराजकी ही होती है। वह किसीके लिये अटका नहीं करती। उनका सेनापति जूनागढ़के तलघरमें होगा तो उनकी वाहिनी दुगुने वेगसे चलेगी और अपने सेनापतिकी मुक्तिके लिये उनके दोनों हाथ तलवार चलायेंगे।'

'केशव! तू हमें डराता है?' कुमार हँसे। 'जयसिंह दोनों हाथोंसे तलवार चलाते हैं, यह तो हम भी जानते हैं, लेकिन तुम यह ठीक कहते हो कि तुम्हें पकड़नेकी बात परिहास ही है और ऐसा परिहास भी जूनागढ़की सीमामें पहुँचकर नहीं किया जा सकता। भगवान् सोमनाथके यात्रीका अपमान करनेकी बात परिहासमें भी सोरठके किसी नागरिकके मुखसे नहीं निकलेगी।'

'लेकिन कुमार चल कब रहे हैं?' केशवने हँसते हुए पूछा।

'तुम अपना रास्ता लो न। मुझे कहाँ तुम्हारे पीछे अपनी साँढ़नीको थकाना है।' कुमार भी हँसे।

'जब नहीं थकाना था तब तो कुमारने बेचारीको दौड़ाते-दौड़ाते थका मारा।' केशव हँसता रहा—'अब ब्राह्मणको पहुँचाये बिना कहीं छुटकारा होता है उसका।'

'हम ब्राह्मणका सत्कार करना जानते हैं। तुम कब चले रहे हो?' कुमारने एक क्षणमें साथ चलनेकी

स्वीकृति दे दी। उन्होंने धीरसिंहके कानमें धीरेसे कुछ कह दिया। वह वहाँसे शीघ्रतासे चला गया।

× × ×

'जय सोमनाथ!' गगनभेदी ध्वनि, आकाशको छाकर उड़ता-बढ़ता आता धूलिका अम्बार, यदा-कदा उसमें जहाँ-तहाँ चलती विद्युत्-रेखा—पता नहीं कितनी सेना चढ़ी आ रही है।

'जय सोमनाथ!' कुमार चन्द्रचूड़ तथा केशवने एक साथ ध्वनि की; किंतु केशवके स्वरमें वह उल्लास नहीं, जो कुमारके स्वरमें है। उसने जिज्ञासासे कुमारकी ओर देखा।

'सोमनाथका एक ब्राह्मण यात्री' कुमार चन्द्रचूड़के अधरोंपर हास्य आया—'जूनागढ़के 'रा' उसका स्वागत करनेका सौभाग्य छोड़ तो नहीं सकते।'

'रा' खेंगार मेरा स्वागत करेंगे—पाटनके सेनानायकका स्वागत?' केशव विस्फारित नेत्रोंसे कुमारको देखता रह गया।

'पाटनके सेनापतिका स्वागत तो जूनागढ़की तलवार करेगी, लेकिन वह तो पाटनके सेनापतिकी बात है। पाटनकी सेनाके साथ ही तो केशव सेनापति है।' कुमारने गम्भीरतासे कहा—'रा' खेंगार तो भगवान् सोमनाथके यात्रीका स्वागत करने आ रहे हैं।'

'जय सोमनाथ!' कोलाहल बढ़ता आ रहा था, धूलि बढ़ती आ रही थी। 'रा'की साँढ़नी रत्नोंके आभूषणोंसे सजी झलमल करती सोनेके नूपुरोंका रणत्कार करती सामने चली आ रही थी।

'जय सोमनाथ!' कुमार चन्द्रचूड़ने पूरी शक्तिसे पुकारा और जरा-सा मस्तक झुकाकर अपने 'रा' के प्रति सम्मान प्रकट किया।

'रा' की साँढ़नी आयी। किसी शत्रुके सामने, किसी प्रतापीके सामने, यहाँतक कि मृत्युके सामने भी न झुकनेवाला रत्नमुकुट-सज्जित 'रा' खेंगारका मस्तक झुक गया—'जय सोमनाथ।'

केशव जानता है यह उसका सम्मान नहीं, यह पाटनके महाप्रतापी सिद्धराज महाराज जयसिंहके प्रधान सेनापतिका सम्मान नहीं, यह भगवान् सोमनाथके यात्रीका, भगवान् सोमनाथका सम्मान है। उसका मस्तक भी झुक गया—'रा' खेंगारके सामने? अरे नहीं, भगवान् सोमनाथके प्रति अपूर्व श्रद्धाके सामने—भगवान् सोमनाथके सामने। उसका कण्ठ यह कहते-कहते भर गया—'जय सोमनाथ!'

'विश्वनाथ! तेरी जय हो!'

(श्रीयुत डॉ० श्रीरंजन सूरिदेवजी, एम० ए०, पी-एच० डी०)

विश्वनाथ! तेरी जय हो!
गंगा-तरंग से लहराती तेरी जटा-छटा की जय हो!

वाम अंग में भूषित गौरी
नारायण के अतिशय प्रिय तू,
कामदेव-मद के अपहर्ता
तेरी महिमा मंगलमय हो;
विश्वनाथ! तेरी जय हो!

सर्पालंकृत नीलकण्ठ तू
बाघम्बर परिधान मनोहर,
भूताधिप, नयनत्रय-शोभित
तेरा रूप सदा शिवमय हो!
विश्वनाथ! तेरी जय हो!

मस्तक चन्द्र-ज्योति से शोभित
शूलपाणि, पंचानन-राजित,
भस्म विमण्डित गौर अंग में;
सदा सर्वदा वरद अभय हो!
विश्वनाथ! तेरी जय हो!

विश्वेश्वर! करुणामय! शिव! हर!
उमारमण! गंगाधर! शंकर!
मणिकर्णिकेश्वर! काशी-अधिपति
तेरा दर्शन अमृतमय हो!
विश्वनाथ! तेरी जय हो!

पूज्या गोमाता

(श्रीरामस्वरूपदासजी पाण्डेय)

धर्मप्राण भारतवर्षमें गायको गोमाता सम्बोधन करते हैं। हमारे वेदपुराणादि ग्रन्थोंमें पूज्या गोमाताकी ऐसी ही महिमाका वर्णन किया गया है। प्राचीन भारतकी संस्कृति गो-आधारित थी। आश्रमोंमें बड़ी संख्यामें गायें रहती थीं। ब्रह्मचारी गोचारण करते थे। भारतके गाँवोंमें प्रत्येक घरमें सम्पन्नताका सूचक गोधन था। गायके बछड़े बड़े होकर कृषिकार्यके माध्यम होते थे। गायोंका गोमय और गोमूत्र भूमिको भोजन देकर उसे उर्वर बनाता था। कृषक स्वावलम्बी था। गोमाता दुग्ध, दधि, घृतादिसे परिवारका पोषणकर उसे नीरोग बनाती थीं। हम स्वस्थ शतायु जीवन जीते थे। गोमाता पृथ्वीमाताका ही स्वरूप हैं। गाय पृथ्वीके समान ही हमारा आधार और पोषण करनेवाली है। अतः भारतीय संस्कृति गो-संस्कृति है। **'माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।'** ***'गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनु धारी॥'*** यहाँ 'गो' शब्द पृथ्वीका वाचक है तथा 'धेनु' शब्द गायका बोधक।

जब हम शास्त्रोंमें गोमाताकी महिमापर दृष्टिपात करते हैं तो **'गोस्तु मात्रा न विद्यते'** अर्थात् गोमाताके समान कोई दूसरा नहीं है। शास्त्रोंमें इस भावनाके पोषक हजारों वाक्य हैं।

वेदोंमें एक महा-अधिवेशनका वर्णन आया है। एक बार सम्पूर्ण देवी-देवता, ऋषि-मुनि मिलकर विचार करने लगे कि संसारमें सबसे अधिक महिमामण्डित कौन है? परस्पर सभी अपने आपको महान् मान रहे थे। विवाद चरम सीमापर पहुँच गया, पर निर्णय नहीं हो सका, तब सभीने वेदभगवान्‌के न्यायालयकी शरण ग्रहण की। सभीने अपने-अपने तर्क प्रस्तुतकर अपने महत्त्वका प्रतिपादन किया। वैदिक मन्त्रोंमें प्रश्नका स्वरूप इस प्रकार है—

को नु गौः क एक ऋषिः किमु धाम का आशिषः।

(अथर्ववेद ८। ९। २५)

सभामें गाय, ऋषि, धाम और समय या ऋतुकी महिमासूचक विचार आनेपर भगवान् अथर्ववेदने अपना निर्णय सुनाया—

एको गौरेक एक ऋषिरेकं धामैकधाशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते॥

(अथर्ववेद ८। ९। २६)

भगवान् अथर्ववेदने कहा—संसारमें केवल एक ही सबसे महान् एवं श्रेष्ठ है। उसीको चाहे गाय कहो या ऋषि कहो, धाम कहो, आशीर्वाद कहो, काल या ऋतु कहो—वह है सम्पूर्ण पृथ्वीका स्वरूप एक ही विश्वरूप गाय। सब विश्व मिलकर एक ही धाम या स्थान है, सबके कल्याणहेतु एक ही आशीर्वाद है, मानवको शुभ कर्म करनेको एक ही काल या ऋतु है, एक ही ऋषि है, उस तत्त्वको गाय कहते हैं। अर्थात् समग्र जीवोंके जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें परम हितकारी एकमात्र गाय है। तब सम्पूर्ण देवोंने प्रार्थना की कि हमें उस प्रकारकी सद्‌बुद्धि प्रदान करें, जिससे गायकी महिमाको समझकर हम उसे प्रमुख स्थान दें और उसे आगे करके स्वयं अनुचर बनकर अजेय हो जायँ। कल्याण प्राप्तकर सुखी हो जायँ।

उत नो धियो गो अग्राः पूषन् विष्णवेवयावः।
कर्ता नः स्वतिमतः॥ (ऋग्वेद १। ९०। ५)

हे देव पूषा! हमारे कर्म गौको प्रमुख स्थान देकर हों, जिससे हम सुखी हों।

समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गो अग्रयाश्वावत्या रभेमहि॥

(ऋग्वेद १। ५३। ५)

अर्थात् यदि किसीको सब प्रकारका वैभव, सुख-समृद्धि प्राप्त करनेकी कामना हो तो गोमाताकी महत्त्व-बुद्धिपूर्वक प्रमुख रूपसे सेवा करें। पुनः यजुर्वेदने गोमाताकी असीम महिमाको इस मन्त्रमें प्रकट किया कि गोमाताके समान उपकारी कोई दूसरा नहीं हो सकता—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥

(यजुर्वेद २३। ४८)

अर्थात् ब्रह्मविद्याकी उपमा सूर्यसे दी जा सकती है, द्युलोककी समुद्रसे, विस्तृत पृथ्वीकी उपमा इन्द्रसे दी जा

सकती है, किंतु गौमाताकी किसीसे उपमा नहीं दी जा सकती। गौमाता निरुपमा है, गौमाता परमात्माके समान ही महामहिमामयी है। वह सच्चिदानन्दस्वरूपा है। गायमें पृथ्वीसे सत् तत्त्वकी, सूर्यसे चित् तत्त्वकी तथा चन्द्रमासे आनन्द तत्त्वकी अभिव्यक्ति होती है। गौ विष्णुपत्नी भूदेवी है तथा वृषभ धर्म है। गौ शब्द स्त्री तथा पुल्लिंग दोनों है। निरुक्तमें **'गोरिति पृथिव्या नामधेयम्।'** (निरुक्त २। ११) कहा है।

गो शब्दे नोदिता पृथ्वी सा हि माता शरीरिणाम्।
शैशवे जननी माता पश्चात् पृथ्वी हि शस्यते॥

वेदोंमें पद-पदपर गायके वात्सल्यमय पोषणके भावका वर्णन हुआ है। माता तो जन्म देकर कुछ समय ही दुग्धपान कराती है, पर इसके पश्चात् पृथ्वीमाता गोरूपसे जीवनभर अन्नादिसे पोषण करती है। गायके आधारपर ही सम्पूर्ण विश्वका पोषण हो रहा है।

वेदभगवान् अनुग्रह करते हैं—

वशा देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति॥

(अथर्ववेद १०। १०। ३४)

जहाँतक सूर्य प्रकाशित होता है, वहाँतकके क्षेत्रमें जो कुछ भी है, वह सब गायके आश्रयसे ही पोषण पाता है, चाहे देव हो या मनुष्य—सभीके पोषणका आधार गोमाता ही हैं।

समग्र राष्ट्रका पोषण गोमाता ही करती हैं।

अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम्॥

(अथर्ववेद १०। १०। ८)

हे गोमाता! पहले तो तू दूध देती है, दूसरे कृषिका अवलम्बन बनती है तथा तीसरे दूध और अन्नके द्वारा राष्ट्रको परिपुष्ट बनाती है। अतः वात्सल्यमयी गोमाताकी महिमाको शब्दोंमें नहीं बाँधा जा सकता है। समग्र विश्वपर गोमाताके अनन्त उपकार हैं। अतः **'कृतस्य प्रति कर्तव्यं एष धर्मः सनातनः।'** हमें अनन्त उपकारक गोमाताकी सेवा मन-वचन और कर्मसे करना चाहिये।

'गोमाता है विश्व की माता'

(पं० श्रीकृष्णजी शर्मा)

गोमाता है विश्व की माता ये ग्रन्थों का नारा है।
गोमाता ही काशी, काबा, गिरजा औ गुरुद्वारा है॥

मित्र शत्रु का भेद करे ना सब को दूध पिलाती है।
मारो या पुचकारो इसको पंचगव्य बरसाती है।
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सबका करे गुजारा है॥
गोमाता है.....

सबसे पहले ब्रह्माजी ने गोमाता की सृष्टी की।
जग का पालन करने हेतु पंचगव्य की वृष्टी की।
महाग्रन्थ महाभारत ने ये दृढ़ता से स्वीकारा है॥
गोमाता है.....

गोबर 'गो का वर' है जानो लक्ष्मी जी का वास यहाँ।
कोटि-कोटि सब देवी देवा इसमें करें निवास यहाँ।
गौमूत्र में गंगाजी की बहती पावन धारा है॥
गोमाता है.....

वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया ये सब रोगों की नासी है।
कैंसर हो या मलेरिया हो टी०बी० हो चाहे खाँसी हो।
असाध्य रोग के कीटाणुओं को इसने ही संहारा है॥
गोमाता है.....

खाद है इसकी बलशाली ये पर्यावरण को शुद्ध करे।
आक्सीजन चौबीस घन्टे दे, कीटाणुओं से युद्ध करे।
अमृत जैसा दूध पिलाती, खुद खाती बस चारा है॥
गोमाता है.....

आओ मिलकर प्रण करें हम गो की जान बचायेंगे।
गो वध को भारत भूमि से मिलकर के हटवायेंगे।
प्राण भले ही चल जायें पर वचन ना हमने टारा है॥
गोमाता है.....

स्वयं कन्हैया आते हैं जब धर्म की हानि होती है।
दर्शन की प्यासी ये गउएं, बाट तुम्हारी जोहती हैं।
'श्रीकृष्ण' अब गोमाता का तू ही एक सहारा है॥
गोमाता है.....

साधनोपयोगी पत्र

(१)

धनसे हानि और धनका सदुपयोग

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला, उत्तर लिखनेमें बहुत देर हुई, इसके लिये क्षमा करें। धनकी सार्थकता उसे भगवान्‌की सेवामें लगानेमें है। लक्ष्मी भगवान्‌की सेविका हैं, उन्हें निरन्तर भगवान्‌की सेवामें ही नियुक्त करते रहना चाहिये। इससे लक्ष्मीको प्रसन्नता प्राप्त होती है और उनका विस्तार होता है। लक्ष्मीपति नारायण तो प्रसन्न होते ही हैं। संसारमें जिसके पास जो कुछ भी है, सब भगवान्‌का है। हमने जो उसपर अपना अधिकार मान लिया है—यह तो हमारी बेईमानी है। हम सेवक हैं, हमारा काम है मालिककी सम्पत्तिकी रक्षा करना और उनके आज्ञानुसार, उनकी माँगके अनुसार उनकी सेवामें उसे समर्पित करते रहना। सारे जीव भगवान्‌के स्वरूप हैं—उनमें जहाँ जिस वस्तुका अभाव है, वहीं भगवान् उस वस्तुको चाह रहे हैं। जिसके पास वह वस्तु है, उसे चाहिये कि भगवान्‌की इस माँगको ठुकरायें नहीं और बड़े आदरके साथ उसपर अपना कोई अधिकार न समझकर उसे यथायोग्य अभावग्रस्त प्राणियोंको अर्पण कर दें। अभावग्रस्त प्राणियोंको दयाका पात्र न समझे और न अपनेको दाता समझकर मनमें अभिमान या उनपर अहसान करे। उन्हें भगवान्‌का स्वरूप समझे और भगवान्‌के नाते उस वस्तुपर उनका सहज अधिकार समझे। यह समझे कि मैंने भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌को ही दी है। जो वस्तुका स्वामी है, उसीको वह वस्तु दी जाय; इसमें हमारे लिये अभिमानकी कौन-सी बात है? इस प्रकार निरभिमान होकर धनके द्वारा भगवान्‌की सेवा करता रहे, इसीमें धनकी सार्थकता है और ऐसा करनेसे ही धनका उत्तम परिणाम होता है। नहीं तो, धन केवल कष्टदायक होता है और नानाप्रकारके पाप उत्पन्न करके नरकोंमें और दुःखपूर्ण योनियोंमें पहुँचा देता है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन।
इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च॥
यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः।
लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम्॥
अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥
भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा।
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः॥
अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः।
त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम्॥

(११। २३। १५—२१)

'प्रायः देखा जाता है कि केवल इकट्ठा करनेवाले कृपणोंको धनसे कभी सुख नहीं मिलता। यहाँ तो वे रात-दिन धन कमाने और उसकी रक्षा करनेकी चिन्तासे जलते रहते हैं और मरनेपर धर्म न करनेके कारण घोर नरकोंमें गिरते हैं। जैसे थोड़ा-सा भी कोढ़ सर्वांगसुन्दर शरीरके सौन्दर्यको बिगाड़ देता है, वैसे ही धनका तनिक-सा लोभ भी यशस्वियोंके निर्मल यशमें और गुणवानोंके सद्‌गुणोंमें कलंक लगा देता है। धन कमानेमें, कमाकर उसे बढ़ानेमें, रक्षा करनेमें, खर्च करनेमें, भोगनेमें और नाश हो जानेमें दिन-रात परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रममें डूबे रहना पड़ता है। १. चोरी, २. हिंसा, ३. झूठ बोलना, ४. दम्भ—दिखाऊ श्रेष्ठता, ५. काम, ६. क्रोध, ७. गर्व, ८. मद—अहंकार, ९. भेदबुद्धि, १०. वैर, ११. अत्यन्त प्यारोंमें भी अविश्वास, १२. स्पर्धा, १३. लम्पटता, १४. जूआ और १५. शराब—ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनसे ही पैदा होते हैं। इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको ऐसे अर्थनामधारी अनर्थ करनेवाले अर्थको दूरसे ही प्रणाम कर लेना (त्याग देना) चाहिये। स्नेह-बन्धनमें बँधकर सदा एक रहनेवाले सगे भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता और सगे-सम्बन्धियों आदिमें भी धनकी कौड़ियोंके कारण

इतनी फूट पड़ जाती है कि वे एक-दूसरेके वैरी बन जाते हैं। थोड़ेसे धनके लिये वे क्षुब्ध हो जाते हैं, उनके क्रोधकी आग भड़क उठती है। वे आपसमें लड़ने लगते हैं और पुराने प्रेम-बन्धनको तोड़कर सहसा एक-दूसरेका गला काटनेको तैयार हो जाते हैं।'

इसपर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। धनासक्ति, धन-कामना, धनप्राप्ति और धनसंग्रहका यह परिणाम जगत्‌में आज प्रत्यक्ष हो रहा है! यह सत्य है—धन आवश्यक है, धनकी सार्थकता भी है और धन कमाना भी चाहिये, परंतु कमाना चाहिये उसे भगवान्‌की सेवाके लिये, भगवान्‌के नियमोंकी रक्षा करते हुए, भगवान्‌के अनुकूल उपायोंसे ही, और धनके प्राप्त होनेपर उसका भगवान्‌के आज्ञानुसार सदुपयोग करना चाहिये। अपने धनपर जो गरीबोंका अधिकार समझता है और उनके हितार्थ उसका यथायोग्य उपयोग करता है, वही सच्चा धनी है। शेष धन-संग्रह करनेवाले लोग तो धनके रूपमें पापका संग्रह करते हैं और सदा दरिद्र ही रहते हैं। धनका वही उपयोग उत्तम है, जो परिणाममें शान्ति, प्रसन्नता और सुख उत्पन करनेवाला हो। जो किसीको कुछ देकर पछताता है, वह या तो धनका दुरुपयोग करता है अथवा धनासक्तिमें फँसा हुआ प्राणी है, जो धनके नामपर पाप कमाता रहता है!

मेरी स्पष्ट बातोंसे आपको दुःख नहीं होगा, ऐसी आशा है। और यह भी आशा है कि आप अबसे अपनेको धनका स्वामी नहीं, परंतु ईमानदार तथा सावधान ट्रस्टी समझेंगे और नियमानुसार उसका सदुपयोग करनेकी चेष्टा करेंगे! शेष प्रभुकृपा।

(२)

पापका प्रकट होना हितकर है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला था। आपकी स्थिति अवश्य ही दयनीय है। इस स्थितिमें आपको दुःख होना कोई बड़ी बात नहीं। परन्तु यह मनुष्यहृदयकी दुर्बलता है। पापके प्रकट हो जानेको असलमें पापका निकल जाना समझना चाहिये और इधर-उधरकी झूठ-कपटभरी चेष्टा करके उसे छिपानेका प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिये। यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि छिपा पाप बढ़ता रहता है। जिसको पाप छिपानेमें सफलता मिल जाती है, उसका दिल दूने उत्साहसे पाप करनेकी प्रेरणा करता है। ऐसा मनुष्य अन्तमें पापमय बन जाता है। आपको पाप छिपानेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये और पापके प्रकट होनेसे आपका जो अपमान-तिरस्कार हो रहा है। इसे भगवान्‌की कृपा समझनी चाहिये। इसमें आपका पाप नष्ट हो रहा है और आप विशुद्ध हो रहे हैं। असलमें पापका फल सामने आनेपर मनुष्यकी जैसी दशा होती है, इस दशाकी, यदि पाप करते समय मनुष्य कल्पना कर सके तो उससे सहजमें पाप नहीं होते। परन्तु उस समय तो विषयासक्तिवश वह अन्धा हुआ रहता है।

आप घबड़ाइये नहीं। भगवान् दयामय हैं, उनका द्वार पापी-तापी सबके लिये सदा खुला है। फिर, आपके पाप तो पश्चात्तापकी आगसे जल रहे हैं। भविष्यमें ऐसा कर्म न बने, इसके लिये प्रतिज्ञा करते हैं, यह भी बड़ा शुभ लक्षण है। इसे भी भगवत्कृपा ही समझिये। भगवान्‌से शक्ति माँगिये, उनसे प्रार्थना कीजिये और उनके बलपर दृढ़ प्रतिज्ञा कर लीजिये। आपका निश्चय दृढ़ होगा तो पापकी शक्ति नहीं है कि वह आपका स्पर्श कर सके। मनुष्यसे जो बुरे कर्म होते हैं, वे आत्माके मूक आदेशसे ही होते हैं। आप पापोंका होना और रहना सह लेते हैं, इसीसे पाप बनते हैं। जिस क्षण आप इन्हें सहन नहीं करेंगे और कामरागवर्जित भगवत्स्वरूप जो परम बल आपको प्राप्त है, उससे अपनेको बलवान् मानकर मन-इन्द्रियोंको ललकार देंगे, उसी क्षण वे पाप-तापको अपने अंदरसे निकाल देंगे, और भगवान्‌के बलके सामने नये पाप-तापोंको तो आनेका मार्ग ही नहीं मिलेगा।

आप भगवान्‌का पावन स्मरण कीजिये और अपमान-तिरस्कारको पापोंका नाश करनेवाली भगवान्‌की भेजी हुई आग समझकर साहसके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने सारे पापोंकी—पापवासनाओंकी उसमें आहुति दे डालिये। आप पवित्र हो जायँगे।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ११। ३२ बजेतक	बुध	स्वाती अहोरात्र	१२ अप्रैल	× × × ×
द्वितीया ,, १। ११ बजेतक	गुरु	स्वाती प्रात: ६। २७ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। ९ बजेसे, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें २। १७ बजेसे, **मेष-संक्रान्ति** रात्रिमें ३। ५१ बजे।
तृतीया ,, ३। ६ बजेतक	शुक्र	विशाखा दिनमें ८।५४ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। ६ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत,** चन्द्रोदय रात्रिमें ९। ३ बजे, **वैशाखी, संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल** प्रात: ७। ५१ बजेतक, **खरमास समाप्त।**
चतुर्थी सायं ५। १२ बजेतक	शनि	अनुराधा ,, ११। ३० बजेतक	१५ ,,	**मूल** दिनमें ११। ३० बजेसे।
पंचमी रात्रिमें ७। १४ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा ,, २। ६ बजेतक	१६ ,,	**धनुराशि** दिनमें २। ६ बजेसे।
षष्ठी ,, ९। २ बजेतक	सोम	मूल ,, ४। ३२ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। २ बजेसे, **मूल** दिनमें ४। ३२ बजेतक।
सप्तमी ,, १०। ३४ बजेतक	मंगल	पू० षा० सायं ६। ४२ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ४८ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें १। ७ बजेसे।
अष्टमी ,, ११। ३५ बजेतक	बुध	उ० षा० रात्रिमें ८। २३ बजेतक	१९ ,,	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत, सायन वृषका सूर्य** रात्रिशेष ४। ४८ बजे।
नवमी ,, १२। १० बजेतक	गुरु	श्रवण ,, ९। ३९ बजेतक	२० ,,	× × × ×
दशमी ,, १२। १३ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा ,, १०। २५ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। १२ बजेसे रात्रिमें १२। १३ बजेतक, **कुंभराशि** दिनमें १०। २ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें १०। २ बजे।
एकादशी ,, ११। ४६ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, १०। ४० बजेतक	२२ ,,	**वरूथिनी एकादशीव्रत** (सबका), **श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।**
द्वादशी ,, १०। ४९ बजेतक	रवि	पू० भा० ,, १०। २६ बजेतक	२३ ,,	**मीनराशि** दिनमें ४। १६ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ९। २८ बजेतक	सोम	उ० भा० ९। ४८ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। २९ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत, मूल** रात्रिमें ९। ४८ बजेसे।
चतुर्दशी ,, ७। ४५ बजेतक	मंगल	रेवती ,, ८। ४९ बजेतक	२५ ,,	**पंचक समाप्त** रात्रिमें ८। ४९ बजे, **मेषराशि** रात्रिमें ८। ४९ बजे।
अमावस्या सायं ५। ४४ बजेतक	बुध	अश्विनी ,, ७। ३२ बजेतक	२६ ,,	**अमावस्या, मूल** रात्रिमें ७। ३२ बजेतक।

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ३। ३० बजेतक	गुरु	भरणी सायं ६। ४ बजेतक	२७अप्रैल	**वृषराशि** रात्रिमें ११। ४० बजेसे, **भरणीका सूर्य** रात्रिमें ८। ६ बजे।
द्वितीया ,, १। ६ बजेतक	शुक्र	कृत्तिका दिन ४। २६ बजेतक	२८ ,,	**श्रीपरशुरामजयन्ती।**
तृतीया ,, १०। ३९ बजेतक	शनि	रोहिणी ,, २। ४५ बजेतक	२९ ,,	**अक्षयतृतीया, भद्रा** रात्रिमें ९। २६ बजेसे, **मिथुनराशि** रात्रिमें १। ५६ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी ,, ८। १३ बजेतक	रवि	मृगशिरा ,, १। ७ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें ८। १३ बजेतक, **श्रीआद्य जगद्गुरु शंकराचार्य-जयन्ती।**
पंचमी प्रात: ५। ५३ बजेतक	सोम	आर्द्रा ,, ११। ३५ बजेतक	१ मई	**कर्कराशि** रात्रिशेष ४। ३७ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें १। ४७ बजेतक	मंगल	पुनर्वसु ,, १०। १६ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १। ४७ बजेसे, **श्रीगंगासप्तमी।**
अष्टमी ,, १२। १३ बजेतक	बुध	पुष्य ,, ९। १३ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १ बजेतक, मूल दिनमें ९। १३ बजेसे।
नवमी ,, ११। १ बजेतक	गुरु	आश्लेषा ,, ८। ३१ बजेतक	४ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ८। २९ बजेसे, **श्रीजानकी-जयन्ती।**
दशमी ,, १०। १६ बजेतक	शुक्र	मघा ,, ८। ११ बजेतक	५ ,,	**मूल** दिनमें ८। ११ बजेतक।
एकादशी ,, ९। ५८ बजेतक	शनि	पू० फा० ,, ८। २० बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ६ बजेसे रात्रिमें ९। ५८ बजेतक, **कन्याराशि** दिनमें २। ३० बजे, **मोहिनी एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, १०। १३ बजेतक	रवि	उ० फा० ,, ८। ५९ बजेतक	७ ,,	× × × ×
त्रयोदशी ,, ११। १ बजेतक	सोम	हस्त ,, १०। ९ बजेतक	८ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १०। ५७ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १२। १३ बजेतक	मंगल	चित्रा ,, ११। ४४ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२। १३ बजेसे, **श्रीनृसिंहचतुर्दशी।**
पूर्णिमा ,, १। ५२ बजेतक	बुध	स्वाती ,, १। ५० बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें १। २ बजेतक, **पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

भगवान् चन्द्रशेखरकी कृपा

बात १९८७ ई० की है। मैं हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्डमें प्रतिनियुक्तिपर उपनिदेशक-शैक्षणिक पदपर कार्यरत था, परंतु बोर्डके कर्मचारियों, एक-दो अधिकारियों एवं राजनेताओंके छुटभैयोंको मैं रास नहीं आया और उन्होंने मुझे जल्दी ही परेशान कर दिया। घोर अनियमितताओंका आरोप लगा दिया। फलत: वे मुझे कॉलेज शिक्षा विभागमें वापस भेजनेकी मुहिममें कामयाब हो गये और मेरी नियुक्ति भिवानीसे १०० कि०मी० दूर राजकीय महाविद्यालय, नारनौलमें पद रिक्त न होनेपर भी कर दी गयी। मुझे बोर्डकी कोठी खाली कर देनेका अप्राधिकृत आदेश दिया गया, परीक्षा-केन्द्रसे पुस्तकें उठा लानेका लाँछन लगाकर एफ०आई०आर० दर्ज करा दी गयी, कोठीके बाहर नित्य डी०एस०पी० साहबकी जीप आकर खड़ी होने लगी। भिवानीका कोई मकान-मालिक मकान किरायेपर देनेको तैयार नहीं था, राजनेताओंके चमचे मार डालनेकी धमकी देने लगे, मित्रगणोंने मेरे घरकी तरफ आनेतकको अपशकुन मानना प्रारम्भ कर दिया। भला चाहनेवाले शिक्षा सचिव एवं बोर्ड अध्यक्षको भी भ्रमित कर दिया गया। बोर्डके तत्कालीन सचिव, जो मेरे कॉलेजके होने तथा राजस्थानी होनेसे मित्र और भाई होनेका दावा करते थे, वे भी विपरीत हो गये और मैं कहींका न रहा। पत्नी स्थानीय विद्यालयमें शिक्षिका थी, बेटा और दो बच्चियाँ पढ़ाई कर रहे थे, दैनिक यात्री बनना बहुत कठिन था, बच्चोंको अकेले छोड़ना भी असम्भव और खतरेसे खाली नहीं था। ऐसेमें कोई क्या करे, वीर हनुमान्का स्मरण किया, माँ संकटाका जप किया, माँ शारदाकी वन्दना की, परंतु सब बेकार! नारनौल जाकर कार्यभार सँभाला। वहाँ संस्कृतके चार साथी पहलेसे ही तैनात। 'घोर संकट' का सामना करने लगा था मैं, पर करता भी क्या?

आखिर हमारी धर्मपत्नीकी एक मित्रने प्रस्ताव रखा—'हमारे घर आ जाओ, छोटा है पर दिल बड़ा होना चाहिये।' डूबतेको तिनकेका सहारा मिल गया था, हम उनके घर चले गये। उनके माता-पिता बहुत ही उदारचेता व्यक्ति हैं। उन्होंने बहू-बेटेकी तरह हमें स्थान दिया, पर राहु-केतु-शनि-जैसे ग्रह ग्रहण लगानेमें तत्पर रहे।

भगवान् शिवके परम भक्त पं० प्यारेलाल शर्मा हेडमास्टरके पदसे हालहीमें रिटायर हुए थे। वे ही हमारे मकान-मालिक थे। एक दिन वे बोल उठे—'आप जोगीवाले बाबाका व्रत कीजिये, पूजा कीजिये, भण्डारा करिये, वे आपके सारे कष्ट दूर करेंगे, मेरे साथ चलिये मैं नित्य जोगीवाला शिवमन्दिर जाता हूँ, चमत्कारी हैं।'

मैंने कहा—मेरा तो किसीपर विश्वास नहीं रहा। हाँ, पहले मेरा काम करें तो मैं उन देवताको मानूँ। उधारका काम मुझे पसन्द नहीं। आप कहते हैं तो आज आपके शिव-मन्दिर नहीं जाकर यहींसे यह प्रार्थना करता हूँ कि यदि सात दिनमें आपके शिवने मुझे भिवानी बुला लिया तो मैं सोमवारका व्रत करूँगा। निरन्तर और नित्य जोगीवाला शिवके मन्दिर जाऊँगा, चाहे कितनी भी देरसे बाहरसे भिवानी आऊँ। इस प्रकार मैंने यह प्रतिज्ञा की कि दिन निकलनेके पूर्व यदि मैं कहीं बाहर नहीं गया तो शिव-मन्दिर नित्य जाऊँगा एवं बाहरसे रातको कितनी भी देरसे लौटूँ, मन्दिर अवश्य जाऊँगा, पर मेरा काम तो पहले हो।

भगवान् चन्द्रशेखरने शायद मुझ आर्त और हठी भक्तकी पुकार उसी दिन सुन ली और चमत्कार यह हुआ कि मेरे स्थानान्तरणके आदेश शनिवारकी रातको मुझे मिल गये। मैं भगवान् शिवशंकर महादेव शम्भुकी मूर्तिसे लिपट गया और कहा—'कल रिलीव होकर आऊँगा, तब आपकी पूजा एवं सोमवारका व्रत आरम्भ करूँगा।' मेरे पदपर दो लोगोंका ट्रांसफर सरकारने कर दिया और दूसरा व्यक्ति रविवारको ही कार्यभार सँभालने आ गया, पर भगवान् शिवने कोई ऐसा चमत्कार किया कि उसे प्राचार्याने कार्यभार नहीं सँभलवाया। दूसरे दिन मैं नारनौल जाकर रिलीव होकर अपने एक मित्रके साथ घोर बारिशमें रातके एक बजे भिवानी लौटा तो भगवान् शिवको जलाभिषेकयुक्त पाया और उनके चरणकमलोंमें मस्तक नवाया, कहा—'अजब तेरी कारीगरी रे करतार'। तबसे मैं भगवान् चन्द्रशेखर जोगीवालाका परम भक्त बन गया।

कहते हैं यह जोगीवाला शिव-मन्दिर २५० वर्ष पुराना है। यह मूर्ति कोई सेठ लेकर आया था, पर रात्रि-विश्रामके बाद बैलगाड़ी आगे नहीं बढ़ी, अत: यहीं शिवलिंगकी प्राण-प्रतिष्ठा करनी पड़ी। मूर्तिकी आँखोंमें एक विशेष आकर्षण है तथा मन्दिरमें चौबीसों घण्टे भक्त शिवोपासना करते देखे जाते हैं। निस्सन्देह भगवान् चन्द्रशेखर अद्भुत चमत्कारी हैं—**'ॐ नमः शिवाय।'—प्रो० रामदत्त शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मानवता

बात लगभग साठ वर्ष पहलेकी है, मेरे पड़ोसीका लड़का अचानक बीमार पड़ गया। आर्थिक स्थिति अच्छी न होनेके कारण इलाजकी व्यवस्था ठीक न हो सकी और इससे उसकी बीमारी बढ़ती ही गयी। पता लगनेपर मैं एक अच्छे डॉक्टरको लेकर उनके घर गया। डॉक्टरने देख-भालकर एक इंजेक्शन लिख दिया और कहा कि यह 'इंजेक्शन तुरंत दे दिया जाय तो रोगीका बच जाना सम्भव है।' जहाँ घरमें खानेका ही टोटा हो, वहाँ इंजेक्शनके लिये पैसे कहाँसे आते, अतः मैंने तुरंत डॉक्टरके हाथसे कागज ले लिया और एक किरायेका रिक्शा लेकर इंजेक्शन लानेके लिये मैं मेडिकल स्टोर्सकी ओर चल दिया। आधे रास्तेमें पहुँचनेपर मुझे याद आया कि घरसे पैसे तो मैं लाया ही नहीं। पर मनमें यह आशा हुई कि किसी अच्छे दूकानदारके पास जाकर सारी परिस्थिति समझा दूँगा तो वह इंजेक्शन दे देगा और मैं उसे बादमें दाम दे आऊँगा। मैं एक अच्छे मेडिकल स्टोरमें पहुँचा। वे भाई खद्दरधारी थे और समझदार भी थे, ऐसा उनकी बोल-चालसे लगा। मैंने इंजेक्शन लेकर उनको सारी परिस्थिति समझा दी। कुछ ही देरमें दूकानदार महोदयके चेहरेका भाव बदल गया और उन्होंने उधार न देनेकी बात कहते हुए 'terms cash' साइनबोर्डकी ओर मेरी दृष्टि खींची। मैंने अपना परिचय देकर पता बताया; पर पैसेके पुजारी वे मेरी बात क्यों सुनने लगे। दिये हुए इंजेक्शनको मेरे हाथसे वापस लेते हुए उन्होंने कहा—'पैसा हो, तब ले जाइयेगा।' उन्हें यों कहते जरा भी संकोच नहीं हुआ!

मैं दूकानपर पहुँचा था, तब इन दूकानदार भाईने कितनी सुन्दर प्रेमपूर्ण मानवताकी मुहर मुझपर लगायी थी। उसके साथ इस समयके इस कोरे व्यापारीकी तुलना नहीं हो सकती। पहली मुहर धोखेकी चीज निकली और मैं इंजेक्शन लिये बिना ही दूकानसे बाहर निकला।

रिक्शेवालेने मेरे हाथमें इंजेक्शन न देखकर सहज ही पूछा—'भाई! इंजेक्शन ले आये?' मैंने सब हकीकत उसे सुना दी। और मेरे आश्चर्यके बीच, किरायेपर रिक्शा चलानेवाले तथा मुश्किलसे दो रुपये रोज कमानेवाले उस रिक्शाचालक भाईने मेरे हाथमें दस रुपयेका नोट निकालकर रख दिया और कहा—'जाइये, इंजेक्शन ले आइये।' मैं नोट लेते झिझका और मैंने बहुत-सी दलीलें कीं; पर उसने इतना ही कहा—'दुःखके समय मनुष्य मनुष्यके काम न आये तो वह मनुष्य कैसा?' मैं इंजेक्शन ले आया और इस प्रकार एक रिक्शेवालेकी मानवताने एक मरते मनुष्यको बचा लिया।

मजदूरी करके पेट पालनेवाला रिक्शाचालक जन्मसे ही भला था, इसलिये वह आजतक वैसा ही भला बना रहा। इधर, नाटक करता हुआ वह व्यापारी समयपर मानवताकी नकाब फेंककर अपने मूलस्वरूपमें आ गया।—**महेश आचार्य**

(२)

सत्साहित्यका प्रभाव

मैं अपने जीवनमें आये परिवर्तनकी घटना पाठकोंको बताना चाहती हूँ कि अच्छा साहित्य हमारे जीवनमें कैसे बदलाव लाता है।

जब मेरा विवाह हुआ तो सभीकी तरह मैं भी अपने अरमान लेकर ससुराल पहुँची। कुछ ही दिनोंमें सारे अरमान टूट गये। मेरे पति बहुत अधिक मदिरापान करते थे। शायद कभी वे बदल जायँगे—यही सोचकर मैं सहती रहीं। परिस्थिति इतनी बिगड़ी कि कई बार भूखा भी रहना पड़ता, मैंने कभी अपने मायकेवालोंको कुछ नहीं बताया, लेकिन जब मेरे माता-पिताको रिश्तेदारोंने बताया और उन्होंने आकर अपनी आँखोंसे मुझे उस परिस्थितिमें देखा तो वे मुझे वहाँसे ले आये। तबतक मेरे दो बेटियाँ हो चुकी थीं। मायके आकर बहुत संघर्ष करनेके बाद मेरी शासकीय नौकरी लग गयी, जो कि मेरे मायकेसे दूर दूसरे शहरमें थी। अपनी दोनों

बेटियोंको लेकर मैं दूसरे शहरमें रहने लगी। जहाँ मुझे रोकने-टोकनेवाला कोई नहीं था।

'जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं॥'

—इस अनुसार मेरा चरित्र बिगड़ता चला गया। मैं रिश्वत भी लेने लगी। जब मेरे परिवारवालोंको पता लगा तो उन्होंने भी मुझसे रिश्ता तोड़ लिया, लेकिन मुझे किसीकी परवाह नहीं थी। किसी भी तरहसे धन कमानेको ही जीवनका उद्देश्य बना लिया। करीब सात-आठ वर्ष इसी तरह बीत गये। इसी बीच एक केसमें मैं फँस गयी और रिश्वतका सारा पैसा उसीमें लग गया।

तभी एक दिन एक परिचितके पास किसी कार्यसे गयी, जो दूसरे शहरमें रहते थे, उन्होंने बताया कि हमारे यहाँ पुस्तक मेला लगा है। चलो, आपको दिखा लायें। पुस्तक मेलेमें मेरी नजर 'गीताप्रेस गोरखपुर' की दूकानकी तरफ गयी। मैंने वहाँसे 'प्रश्नोत्तरमणिमाला' एवं 'ज्ञानके दीप जले' पुस्तकें यह सोचकर खरीदीं कि परिचितको बुरा न लगे।

खैर, उन्होंने वहाँसे मुझे ट्रेनमें बैठा दिया। मैं ऊपरकी बर्थपर बैठकर 'प्रश्नोत्तरमणिमाला' पढ़ने लगी। ट्रेन जिस रफ्तारसे चल रही थी, उसी रफ्तारसे मेरा जीवन बदल रहा था। मेरी आँखोंसे टप-टप आँसू बहने लगे। दो घण्टे बाद मेरा स्टेशन आ गया। घर आकर दोनों पुस्तकें पढ़ीं और दो दिनतक आँसू बहाती रही।

अब सोचा कि इस दलदलसे बाहर कैसे निकला जाय? चारों तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा। कुछ नजर नहीं आता था। तब 'हारेको हरिनाम' याद आया। भगवान्से प्रार्थना की। सच्चे हृदयकी प्रार्थना हरि अवश्य सुनते हैं। मेरी भी सुनी!

कुछ दिनोंके बाद ट्रेनमें एक सज्जन मिले, जिन्होंने बताया कि अगर आपको यहाँसे ट्रांसफर करवाना हो तो मेरे एक मित्र अभी स्टेशनपर आयेंगे। मैं उनसे मिला दूँगा। वे आपकी मदद करेंगे। उन्होंने मेरी सहायता की और मेरा ट्रांसफर वापस मेरे अपने शहरमें करवा दिया। उसके बाद मैंने पीछे पलटकर नहीं देखा।

यहाँ आकर मैं पूर्ण सात्त्विक जीवन जीने लगी, यहाँ आते ही सौगन्ध खायी कि कभी रिश्वत न दूँगी, न लूँगी। धीरे-धीरे परिवारवालोंको भी मुझपर विश्वास हो गया।

आज मेरे घरमें गीताप्रेस गोरखपुरकी करीब २०० पुस्तकें है, जिन्हें मैं कई-कई बार पढ़ चुकी हूँ। उन पुस्तकोंके अनुसार ९० प्रतिशत अपने जीवनको बनानेमें सफल हो पायी हूँ।

अब मेरी बेटियाँ बड़ी हो चुकी हैं और दोनों शासकीय नौकरीमें हैं। उनको भी गीताप्रेसकी पुस्तकोंसे अच्छे संस्कार मिले हैं। मैं तो गीताप्रेसको ही अपना गुरु मानती हूँ।

कुछ समय पहले मेरी स्वामी रामसुखदासजीके सान्निध्यमें रहनेवाले एक संतसे भेंट हुई। उन्होंने कहा कि आपके बेटा नहीं है, आप गोपालजीको बेटा बना लो। तबसे गोपालजीकी सेवा करना और गीताप्रेस की पुस्तकोंका प्रचार करना। 'कल्याण' के ग्राहक बनाना—यही मेरे जीवनका उद्देश्य बन गया है।—**एक पाठिका**

(३)

एक सत्य घटना

मैं एक बैंकमें सशस्त्र सुरक्षा गार्डके रूपमें पदस्थ हूँ। दिनांक १३ अप्रैल २०१५ ई० को एक अनोखी घटना बैंकमें घटी। हुआ यूँ कि भोजन-अवकाशके बाद एक ग्राहक बैंक आया और उसने अपने खातेसे तीन हजार रुपये आहरित किये। उसे कैशियरने पाँच-पाँच सौ के छः नोट इश्यू किये। वह ग्राहक एक स्टेशनरीकी दुकानपर कार्य करता और सुबह-सुबह अखबार भी बाँटता था, तब जाकर अपने परिवारका उदर-पोषण कर पाता था। उसके लिये तीन हजार रुपये सामान्य बात नहीं थी। राशि आहरित करनेके बाद वह न जाने किस जल्दबाजीमें था कि उसकी जेबसे वे पाँच-पाँच सौके नोट स्कूटर-स्टैण्डके समीप बैंक-परिसरमें ही गिर गये और वह चला गया।

मैं अपनी बारह बोर बन्दूक काँधेपर लिये सजगतासे बैंक-परिसरमें टहल रहा था। इतनेमें एक्टिवा स्कूटरसे एक बहन आयीं और उन्होंने संकेत किया कि किसी व्यक्तिके ये पैसे पड़े हैं। इतना कहकर वे बहन अपने गन्तव्यको रवाना हो गयीं। वे तीन हजार रुपये मैंने उठाये और बैंकमें ऊँची आवाजमें कहा कि भाई! किसी सज्जनके पैसे गिरे हैं और मुझे मिल चुके हैं। जिसके हों, वे सज्जन राशिकी तादाद और नोटोंकी संख्या सही-सही बतायें और रुपये प्राप्त कर लें। राशि और नोटोंका प्रकार मैंने गोपनीय रखा। लगभग सौ ग्राहक और चौदह लोगोंके स्टॉफसहित राशिपर किसीने अधिकार नहीं जताया। राशि शाखा प्रबन्धकके पास जमा कर दी गयी।

ब्रांच बन्द होते समय उन ग्राहक महोदयने खोजती निगाहोंके साथ बैंकमें प्रवेश किया और यहाँ-वहाँ खोजने लगे। मैंने उनसे पूछा कि भाई! क्या कुछ खो गया है? तो उन्होंने कहा—'गनमैन साहब! मैंने ३००० रुपये आहरित किये थे। जेबमें रख लिये थे, पर न जाने कहाँ गिर गये हैं। उसके चेहरेसे साफ झलक रहा था कि उक्त राशि उसीकी है। मैंने उसे सान्त्वना दिलायी, साहस दिलाया कि घबराइये नहीं, पैसे मिल जायँगे। फिर शाखा प्रबन्धकको उसने एन्ट्रीकी हुई पास बुक दिखायी तो उसमें १३ अप्रैल २०१५ ई० को ३००० रुपयेकी राशि आहरित की गयी थी। नोट भी उसने पाँच-पाँच सौके छः ही बताये थे। शाखा प्रबन्धकने उक्त राशि उसे सहर्ष सौंपी। उस गरीब एवं सहृदय इंसानने सन्तोषकी साँस ली, उसका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने तत्काल सौ रुपये मुझे पारितोषिक (इनामके रूप) स्वरूप दिये और बार-बार धन्यवाद देता रहा। मैंने कहा कि भाई! धन्यवादकी पात्र तो वे बहनजी हैं, जिन्होंने तुम्हारे गिरे हुए रुपयोंकी ओर मुझे संकेत किया और उन परमात्माका धन्यवाद करो, जिन्होंने मुझे कर्तव्य-पथपर बनाये रखा।

कहनेका तात्पर्य है कि ईश्वर कभी-कभी आपकी ईमानदारीकी परीक्षा किसी भी रूपमें ले सकता है। अतः हमें उसके सहारे अपने कर्तव्य-पथपर दृढ़ रहना चाहिये।

उसकी राशि उसे ही प्राप्त हो गयी तो मुझे भी आत्मिक संतोष प्राप्त हुआ और लम्बे समयसे मेरा कल्याणका ग्राहक होना सार्थक रहा।—**रामशंकर सिंह**

(४)

सौहार्दका सन्देश

भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मस्थली मथुराके सराय आजिमाबाद मोहल्लेकी घटना है। इस अलौकिक प्रेमकी नगरीके मुंशी खाँकी अनूठी इबादत साम्प्रदायिक सौहार्दकी मिसाल है। रोजाना पाँच वक्तकी नमाज और शामको बजरंगबलीका स्मरण करनेवाले मुंशी हकीकतमें इंसानियतकी नौका लेकर शान्ति और भाईचारेकी लहरपर सवार हैं।

हाईवेके समीप बसे मोहल्लेमें रहनेवाले मुंशी पेशेसे मजदूर हैं, पर वे इंसानियतके असल पैरोकार हैं और बंदिशोंसे बेफिक्र हो कहते हैं कि यह हनुमान्जीका आदेश है। मुंशी बताते हैं कि एक रोज नमाज पढ़कर लौटा तो आँख लग गयी। स्वप्नमें हनुमान्जी आये तो मैंने पूछा कि मैं तो मुसलमान हूँ, आप मेरे पास क्यों आये हैं? इसके बाद सपनेमें हनुमान्जी बोले कि मैंने तो सबको इंसान बनाया है, बाँटनेका काम तो तुम लोगोंने खुद किया।

मुंशी खाँ भावुक होकर कहते हैं कि उसके बादसे उनका हर काम अच्छा होने लगा। वह शहरके भैंस बहोरा इलाकेसे बजरंगबलीकी मूर्ति लेकर आये और अपने घरके पास मूर्तिकी स्थापना करा दी। तबसे लेकर आजतक उनकी साँझ मूर्तिके समक्ष दीया जलानेके साथ ही रौशन होती है। वे बजरंगबलीको समय-समयपर चोला भी चढ़ाते हैं। घरवालोंकी रजामन्दीके सवालपर मुंशी खाँ कहते हैं कि हमें कोई भी मजहब बैर करना नहीं सिखाता। हमारे फैसलेसे परिवार खुश है। हम तो इंसानियतके पुजारी हैं और मजदूरी करके रोजी-रोटी चलाते हैं। **[प्रेषक—डॉ० श्रीहेतीलाल त्रिपाठी]**

मनन करने योग्य

आत्म-प्रशंसासे पुण्य नष्ट हो जाते हैं

महाराज ययातिने दीर्घकालतक राज्य किया था। अन्तमें सांसारिक भोगोंसे विरक्त होकर अपने छोटे पुत्र पूरुको उन्होंने राज्य दे दिया और वे स्वयं वनमें चले गये। वनमें कन्द-मूल खाकर क्रोधको जीतकर वानप्रस्थाश्रमकी विधिका पालन करते हुए पितरों एवं देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिये वे तपस्या करने लगे। वे नित्य विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते थे; जो अतिथि-अभ्यागत आते, उनका आदरपूर्वक कन्द-मूल-फलसे सत्कार करते और स्वयं कटे हुए खेतमें गिरे अन्नके दाने चुनकर तथा स्वत: वृक्षसे गिरे फल खाकर जीवन-निर्वाह करते थे। इस प्रकार पूरे एक सहस्र वर्ष तप करनेके बाद महाराज ययातिने केवल जल पीकर तीस वर्ष व्यतीत कर दिये। फिर एक वर्षतक केवल वायु पीकर रहे। उसके पश्चात् एक वर्षतक वे पंचाग्नि तापते रहे। अन्तके छ: महीने तो वायुके आहारपर रहकर एक पैरसे खड़े होकर वे तपस्या करते रहे।

इस कठोर तपस्याके फलसे राजा ययाति स्वर्ग पहुँचे। वहाँ देवताओंने उनका बड़ा आदर किया। वे कभी देवताओंके साथ स्वर्गमें रहते और कभी ब्रह्मलोक चले जाते थे। उनका यह महत्त्व देवताओंकी ईर्ष्याका कारण हो गया। ययाति जब कभी देवराजके भवनमें पहुँचते, तब इन्द्रके साथ उनके सिंहासनपर बैठते थे। देवराज इन्द्र उन परम पुण्यात्माको अपनेसे नीचा आसन नहीं दे सकते थे, परंतु स्वर्गमें आये मर्त्यलोकके एक जीवको अपने सिंहासनपर बैठाना इन्द्रको बुरा लगता था। इसमें वे अपना अपमान अनुभव करते थे। देवता भी चाहते थे कि किसी प्रकार ययातिको स्वर्ग-भ्रष्ट कर दिया जाय। इन्द्रको देवताओंका भाव भी ज्ञात हो गया।

एक दिन ययाति इन्द्रभवनमें देवराज इन्द्रके साथ एक सिंहासनपर बैठे थे। इन्द्रने अत्यन्त मधुर स्वरमें कहा—'आप तो महान् पुण्यात्मा हैं। आपकी समानता भला, कौन कर सकता है। मेरी यह जाननेकी बहुत इच्छा है कि आपने कौन-सा ऐसा तप किया है, जिसके प्रभावसे ब्रह्मलोकमें जाकर वहाँ इच्छानुसार रह लेते हैं?'

ययाति बड़ाई सुनकर फूल गये और वे इन्द्रकी मीठी वाणीके जालमें आ गये। वे अपनी तपस्याकी प्रशंसा करने लगे। अन्तमें उन्होंने कहा—'इन्द्र! देवता, मनुष्य, गन्धर्व और ऋषि आदिमें कोई भी तपस्यामें मुझे अपने समान दीख नहीं पड़ता।'

बात समाप्त होते ही देवराजका भाव बदल गया। कठोर स्वरमें वे बोले—'ययाति! मेरे आसनसे उठ जाओ। तुमने अपने मुखसे अपनी प्रशंसा की है, इससे तुम्हारे वे सब पुण्य नष्ट हो गये, जिनकी तुमने चर्चा की है। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, ऋषि आदिमें किसने कितना तप किया है—यह बिना जाने ही तुमने उनका तिरस्कार किया है, इससे अब तुम स्वर्गसे गिरोगे।'

आत्म-प्रशंसाने ययातिके तीव्र तपके फलको नष्ट कर दिया। वे स्वर्गसे गिर गये। उनकी प्रार्थनापर देवराजने कृपा करके यह सुविधा उन्हें दे दी थी कि वे सत्पुरुषोंकी मण्डलीमें ही गिरें। सत्संग-प्राप्तिके परिणामस्वरूप वे पुन: शीघ्र ही स्वर्ग जा सके। **[महाभारत, आदिपर्व]**

Dear Contributors,

Sevā-Tyāga annual number of **Kalyana-Kalpataru** published last year, was well received by our kind readers. It is only Divine Grace and result of affectionate effort of our contributors. This year we propose to publish **Bhakti Number** in **2017.**

The aim of human life is attainment of divine love which is possible only through *Bhakti*. God has created the universe, is all powerful, but he yearns for the love of His children—human beings; because human beings alone possess the quality of heart and soul that can satisfy His hunger for love.

To focus on that connection of Divine love, **Kalyana-Kalpataru** is to publish **Bhakti Number** in **October 2017**. You are requested to send your articles on any of the topics suggested below or any other topic relevant to the theme. The write-up should be concise and lucid. Typed matter should be sent to reach us before **30th June, 2017**.

Bhakti-Number

1. What is Bhakti? 2. 'सा तु परमप्रेमरूपा—says Nārada 3. Prayer from heart—crux of Bhakti 4. Bhakti—an unconditional love for God 5. Unconditional surrender to God is Bhakti 6. Different aspects of Bhakti—(i) Psychological aspects (ii) Procedural aspects (iii) Social aspects **7. Kinds of Bhakti**—(i) Navadhā (Nine ways) according to Rāmāyaṇa (ii) Navadhā according to Bhāgavata (iii) Other kinds like Saṅkīrtana, Dhyāna, Nāma-Japa etc. **8. Description of Bhakti in**—(i) Vedas (ii) Upaniṣads (iii) Puranic Literature (iv) Literary traditions 9. Bhakti as described in Bhagavadgītā 10. Bhakti as described in Vaiṣṇava and Śaiva traditions 11. Importance of Bhakti in God-realization 12. Complementary nature of Bhakti and Jñāna 13. Special characteristics of Jñānī Bhaktas 14. Ease in persuing Bhakti as compared to Jñāna 15. Bhakti and Yoga 16. Bhakti open to all without distinction of caste etc. 17. Niṣkāma Bhakti—without worldly desires 18. Bhakti is nothing but service to all as Vasudeva incarnate 19. Bhakti as a Householder 20. Bhakti by chanting the Divine Name and Mantra 21. Bhakti-Sūtras of Nārada and Śāṇḍilya **22. Different Ācāryas on Bhakti**—(i) Rāmānujācārya (ii) Ballabhācārya (iii) Nimbārkācārya (iv) Madhvācārya (v) Śaṅkarācārya (vi) Other Ācāryas 23. Caitanya Mahāprabhu and his Kīrtana–Bhakti **24. Different Bhāvas in Bhakti**—(i) Rādhā Bhāva (ii) Sakhā Bhāva (iii) Sakhī Bhāva 25. Apparent symptoms of a Bhakta **26. Inspiring episodes in the life of great Bhaktas**—(i) Gopikās (ii) Vālmīki (iii) Śabarī (iv) Bharata (v) Ambarīṣa (vi) Arjuna (vii) Mīrā Bāī (viii) Nāmadeva (ix) Ekanātha (x) Other Bhaktas **27. Moving instances of**—(i) Viṣṇu Bhaktas (ii) Śiva Bhaktas (iii) Śakti Bhaktas (iv) Gaṇeśa Bhaktas (v) Guru Bhaktas (vi) Other Bhaktas 28. Bhakti in Islam / Sufism 29. Attributes of Nirguṇa and Saguṇa Bhakti 30. Parā Bhakti—the ultimate unity with Divine

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१- प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर, २-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक

३- मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये), राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका, राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

५- उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

पाठकोंसे नम्र निवेदन—वी० पी० पी०से भेजे गये अङ्कोंका भुगतान प्राप्त करनेमें समय लगनेके कारण उनके भुगतानकी प्रतीक्षा किये बिना फरवरी एवं मार्चके अङ्क सभी ग्राहकोंको प्रेषित किये जा रहे हैं, जिससे पाठकोंको मासिक अङ्क समयसे प्राप्त हो जाय। व्यवस्थापक—**'कल्याण कार्यालय'—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

प्र० ति० २०-२-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी चैत्र शुक्ल एकादशी (७ अप्रैल)-से सत्संगका आयोजन किया गया है।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्‌गणोंके पधारनेकी बात है। **गीताभवनमें चैत्र एवं आश्विन नवरात्रमें श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्न-पाठका कार्यक्रम रहता है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको अवश्य उठाना चाहिये।

पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी द्विजातियोंका सामूहिक यज्ञोपवीत संस्कार दिनांक २८ मई (मिति ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया)-को होना निश्चित हुआ है, जिसकी पूजा २७ मईको प्रारम्भ हो जायगी। इच्छुक जनोंको २६ मईतक गीताभवन पहुँच जाना चाहिये।

गीताभवनमें संयमित साधक-जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट-सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने, महँगे मोबाइल आदि जोखिमकी वस्तुओंको, जहाँतक सम्भव हो, नहीं लाना चाहिये।

सत्संगमें आनेवाले साधकोंको **मतदाता पहचान-पत्र** अथवा फोटोयुक्त अन्य **पहचान-पत्र** रखना आवश्यक है।

व्यवस्थापक—गीताभवन, पो०—स्वर्गाश्रम—२४९३०४

गीताप्रेस, गोरखपुरको तकनीकी सलाहकार/प्रबन्धककी आवश्यकता है

गीताप्रेस, गोरखपुर विगत 9 दशकोंसे प्राय: लागत मूल्यसे भी कम मूल्यपर सत्साहित्य प्रकाशित कर रहा है। वर्तमान समयमें 4500/5000 टन पेपरकी खपतके साथ 15 भाषाओंमें लगभग 1800 तरहकी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। सभी पुस्तकोंको उपलब्ध करानेका दबाव पाठकों/पुस्तक विक्रेताओंका बराबर बना रहता है। यद्यपि इसके लिये नयी तकनीकका सहारा लिया जा रहा है फिर भी पुस्तकोंकी उपलब्धता प्रभावित हो जाती है। इसके लिये आवश्यकता है ऐसे सेवाभावी अनुभवी विशेषज्ञकी जो उचित लागत मूल्यपर पुस्तकोंको शीघ्र उपलब्ध करानेमें हमारे उपलब्ध संसाधनोंकी समीक्षा करके उचित सलाह देनेमें सहयोग कर सके। इसके लिये कार्मिक प्रबन्धक, गीताप्रेस, गोरखपुरके नाम प्रार्थनापत्र भेजकर, email-manager@gitapress.org अथवा Mobile no. 9336400355 पर सम्पर्क कर सकते हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

1. कल्याणके पाठकोंकी शिकायतोंके शीघ्र समाधानके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन **09235400242/09235400244** उपलब्ध है। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य दिवसमें दिनमें 9.30 बजेसे 4.30 बजेतक सम्पर्क कर कल्याणसे सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

2. कल्याणके सदस्योंको साधारण/मासिक अंक निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये कल्याणकी वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹२२० के अतिरिक्त ₹२०० देनेपर मासिक अंकोंको भी पंजीकृत डाकसे भेजनेकी व्यवस्था है।

व्यवस्थापक—**'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**